वर्ष ४२] * * * [अङ्क ११

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे । हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ॥

संस्करण १,५०,०००

विषय-सूची

कल्याण, सौर मार्गशीर्ष २०२५, नवम्बर १९६८

विषय	पृष्ठ-संख्या
१—मधुर लाडिली-लाल [कविता] ···	१२६५
२—कल्याण ('शिव') ···	१२६६
३—ब्रह्मलीन परमपूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतमय उपदेश (उनके विभिन्न सज्जनोंको लिखे पत्रोंसे) ···	१२६७
४—सद्विचार और दुर्विचार (श्रीप्रज्ञानन्दजी)	१२६९
५—साधनाके दो प्रकार ···	१२७१
६—मानवताकी सेवा—ईश्वरकी सच्ची पूजा (डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी) ··· ···	१२७५
७—श्यामका स्वभाव—९ (श्रीसुदर्शन-सिंहजी) ··· ···	१२७८
८—धर्मप्राण स्वामी विवेकानन्द (पं० श्रीशिवनाथजी दुबे) ··· ···	१२८१
९—भगवान् श्रीराम-कृष्णके तथा रामायण-गीताके अंग्रेज भक्त मेजर श्रीलीद (भक्त श्रीरामशरणदासजी) ···	१२८६
१०—आदर्श व्यवहार कहानी] (श्रीदुर्गाशंकरजी व्यास) ··· ···	१२८८
११—श्रीबगलामुखी देवीकी उपासना (ब्रह्मचारी श्रीपागलानन्दजी उपनाम पं० श्रीयज्ञदत्तजी शर्मा 'वानप्रस्थी' वैद्य) ··· ···	१२९०
१२—जीवनमें स्वरोदयकी महत्ता [नौली कर्म] (श्रीगुरुरामप्यारेजी अग्निहोत्री) ···	१२९४
१३—मानव-जीवनकी सफलता (श्रीमती रामप्यारी देवीजी, एम्० एल्० सी० (बिहार)) ··· ···	१२९५
१४—नेत्र-दान [कहानी—सत्य घटनापर आधारित] (श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)	१२९८
१५—धर्मनिरपेक्षिताका अभिशाप (श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन) ···	१३००
१६—अधर्म तथा असत्कर्मका फल दैवी प्रकोप—जन-धनका नाश ···	१३०३
१७—सूखा तथा अतिवर्षासे पीड़ित प्राणियोंकी सहायता परम कर्तव्य (हनुमानप्रसाद पोद्दार) ···	१३०५
१८—त्यागका मूल्य (श्रीनिरञ्जनदासजी धीर)	१३०७
१९—बिन्दु, नाद तथा कला-तत्त्व (श्री-मनमोहनप्रसादजी) ···	१३१०
२०—जन्म व्यर्थ ही बीत गया [संकलित-पद्य] (श्रीसूरदासजी) ···	१३१६
२१—भगवन्नाम-जप (नाम-जप-विभाग, गीताप्रेस (गोरखपुर) ···	१३१७
२२—भगवन्नामकी महिमा [संकलित—पद्मपुराण, उत्तरखण्ड] ···	१३१९
२३—पढ़ो, समझो ओर करो ···	१३२०

चित्र-सूची

१—माताकी मनुहार	(रेखाचित्र) ···	मुखपृष्ठ
२—मधुर लाडिली-लाल	(तिरंगा) ···	१२६५

वार्षिक मूल्य भारतमें ९.०० विदेशमें १३.३५ (१५ शिलिंग) } जय विराट जय जगत्पते । गौरीपति जय रमापते ॥ { साधारण प्रति भारतमें ५० पै० विदेशमें ८० पै० (१० पेंस)

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार, चिम्मनलाल गोस्वामी, एम्० ए०, शास्त्री

मुद्रक-प्रकाशक—मोतीलाल जालान, गीताप्रेस, गोरखपुर

मधुर लाड़िली-लाल

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते । पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते ॥
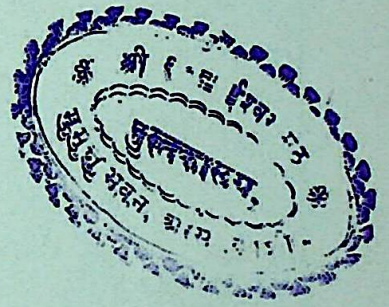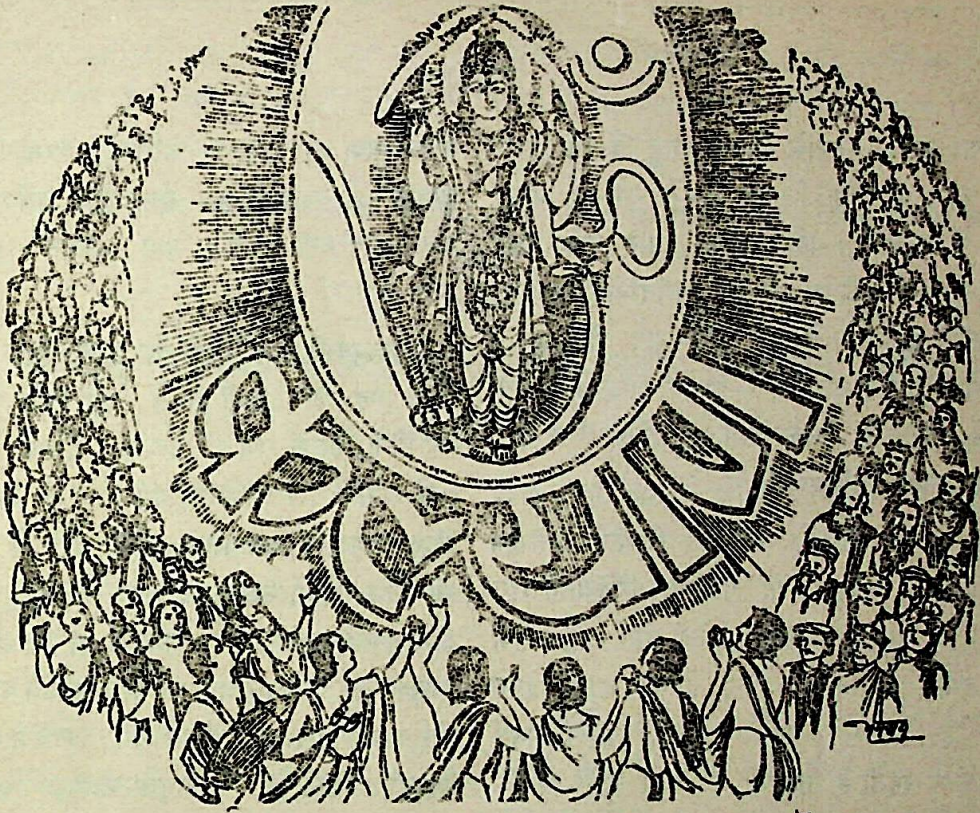
त्रयी सांख्यं योगः पशुपतिमतं वैष्णवमिति प्रभिन्ने प्रस्थाने परमिदमदः पथ्यमिति च ।
रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथजुषां नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव ॥

वर्ष ४२ | गोरखपुर, सौर मार्गशीर्ष २०२५, नवम्बर १९६८ | संख्या ११
पूर्ण संख्या ५०४

मधुर लाड़िली-लाल

बंदौं मधुर लाड़िलि-लाल ।
रूप-रसके दिव्य अनुपम उदधि अमित बिसाल ॥
स्याम घन तन, मुरलि कर बर, अधर मृदु मुसुकान ।
सिर मुकुट सिखिपिच्छ सोहत, सुभग दृग रसखान ॥
नित्य अतुल अचिन्त्य गुन, सौन्दर्य निधि अभिराम ।
रूप राधा मदनमोहन-हृदय-हरण ललाम ॥
चन्द्रिका सिर सोह, मोहन नयन, मुख मृदु हास ।
कर रची मेंहदी, सजे तन दिव्य भूषन-बास ॥
तरु-लता-पल्लव-सुमन-सिखि जुत अरन्य सुठाम ।
स्याम-राधा मुदित ठाढ़े कदँब-तल सुख धाम ॥

याद रक्खो—मनुष्यके दो बड़े शत्रु हैं जो सदा साथ रहते हैं और जिनको हमने जीवनमें प्रमुख स्थान दे रक्खा है। यहाँतक कि हमारे प्रत्येक कार्य प्रायः उन्हीं दोनोंकी प्रेरणासे और उन्हीं दोनोंके नियन्त्रण-निरीक्षणमें होते हैं। वे शत्रु हैं—राग और द्वेष। अर्जुनसे श्रीकृष्णने कहा था—'प्रत्येक इन्द्रियके प्रत्येक विषयमें राग-द्वेष हैं, उनके वशमें मत होओ! वे दोनों तुम्हारे कल्याण-पथके शत्रु हैं।'

याद रक्खो—किसीका राग ही किसीके प्रति द्वेष होता है। हम किसी प्राणी, पदार्थ, परिस्थितिमें राग रखते हैं तो उनका जो कुछ विरोधी होता है, उसके प्रति हमारा द्वेष होता है। द्वेषका बदला द्वेषसे मिलता है। जिसके मनमें द्वेष है, उसके मनमें नित्य जलन रहती है तथा वह सदा बुरी बातें—दूसरोंके अहितकी बातें ही सोचा करता है और जैसे मनके विचार होते हैं, वैसी ही क्रिया बनती है। फलतः द्वेष जीवनका स्वभाव बन जाता है।

याद रक्खो—जिन प्राणी, पदार्थ, परिस्थितियोंमें तुम्हारा राग है और जिनको तुम सदा अपनी ममताकी सीमामें रखना चाहते हो, वे कदापि सदा तुम्हारी नहीं रहेंगी। वे तुमसे अलग होंगी ही, तुमसे बिछुड़ेंगी ही और ममताकी वस्तुका वियोग होनेपर बड़ा दुःख होगा।

याद रक्खो—राग और द्वेष—दोनों ही चित्तमें अशान्ति रखते हैं तथा नयी-नयी अशान्ति पैदा करते रहते हैं। रागकी प्राप्त वस्तुओंको बनाये रखने तथा अप्राप्त वस्तुओंको पानेकी कामना रहती है और द्वेषकी वस्तुओंसे विनाशकी। दोनों ही प्रकारकी कामनाएँ विवेकपर अज्ञानका पर्दा डाल देती हैं और अज्ञानवश तुम अपना भविष्य सोचनेमें असमर्थ होकर ऐसे-ऐसे बुरे संकल्प तथा बुरे कार्य कर बैठते हो, जिनका परिणाम तुम्हारे लिये बहुत ही बुरा होता है। उस परिणामके भोगसे बच नहीं सकते। पीछे पछतानेसे कुछ फल होता नहीं।

याद रक्खो—तुम जिससे द्वेष करते हो, अवश्य ही उसमें तुम्हें दोष दिखायी देते हैं। यह नियम है, जिसमें द्वेष होगा, उसके गुण भी दोषरूप दिखायी देंगे और तुम्हें किसीमें दोष इसीसे दिखायी देते हैं कि तुम्हारे अंदर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें वे दोष हैं। जिसमें जो चीज न हो, उसको कहीं भी वह नहीं दीखती। छोटे बच्चेमें जबतक कामवासनाका ज्ञान नहीं होता, तबतक कोई कैसा ही आचरण उसके सामने करे, उसमें कोई वासना उसे नहीं दिखायी देगी; क्योंकि उसमें वह है नहीं। किसी दैवी सम्पदायुक्त महापुरुषमें यदि सर्वत्र सद्बुद्धि या भगवद्बुद्धिका उदय हो गया है तो उसकी दृष्टि सभीमें संत या भगवान्‌को देखेगी—महात्मामें भी और चोर-डाकूमें भी; क्योंकि उसके जीवनमें संत और भगवान् ही रह गये हैं। अतएव तुम किसीमें दोष देखते हो तो इससे सिद्ध होता है कि तुममें वह दोष है, इसलिये तुम पहले अपने दोषको देखो, उससे घृणा करो, उससे द्वेष करो और उसका नाश करनेके प्रयत्नमें लग जाओ।

याद रक्खो—तुम्हें जो कुछ अच्छा-बुरा फल मिल रहा है, उसका तुम्हारे जन्मसे पहले ही निर्माण हो चुका है और वह हुआ है उस न्यायपरायण निर्भ्रान्त दयामयी नियन्त्रण करनेवाली प्रभुशक्तिके द्वारा, जो तुम्हारे अपने ही किये हुए कर्मके परिणामके रूपमें तुम्हारे कल्याणके लिये उस फलका निर्माण करती है। दूसरा निमित्त बनकर अपना बुरा भले ही कर ले—तुम्हारे कर्मके बिना तुम्हारा बुरा वह नहीं कर सकता।

अतएव तुम्हें जो फल मिल रहा है, इसके मूलमें तुम्हारा ही दोष है—अपराध है। अतएव दूसरेको दोष देकर उससे द्वेष करना व्यर्थ है और नया पाप करना है।

याद रक्खो—महान् सत्य यह है कि समस्त चराचर भगवान्‌की ही अभिव्यक्ति है, उनके रूपमें भगवान् ही प्रकट हैं, फिर भगवान्‌से द्वेष कैसे किया जाय। उनका तो हर हालतमें पूजन-सम्मान ही करना है।

सीय राम मय सब जग जानी। करहु प्रनाम जोरि जुग पानी॥

'शिव'

ब्रह्मलीन परमपूज्य श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके अमृतमय उपदेश

(उनके विभिन्न सज्जनोंको लिखे पत्रोंसे)

(१)

तुम्हारा पत्र मिला। समाचार विदित हुए। तुमने लिखा कि भगवान्‌की मधुरताके सम्बन्धमें जो पत्रमें विशेष बातें लिखी हुई थीं, उनको पढ़कर बड़ी प्रसन्नता हुई, किंतु पूरी प्रसन्नता तो तब होगी जब वे बातें प्रत्यक्ष अनुभव होने लगेंगी। सो इसके लिये एकान्तमें भगवान्‌के सामने करुणभावसे रोकर स्तुति-प्रार्थना करनी चाहिये। तुमने लिखा कि एक दिन जब मैं मानसिक पूजा कर रहा था तब मनमें एक बड़ी सुन्दर बात आयी कि आँसुओंसे मैं आपके चरण धोऊँ सो यह भाव तो एकमात्र भगवान्‌के प्रति ही होना चाहिये। तुमने लिखा कि विशुद्ध प्रेम निरन्तर बढ़े ऐसी कृपा कीजिये सो प्रभुकी कृपासे ही प्रेम निरन्तर बढ़ सकता है। उनकी कृपा हमलोगोंपर है ही। उसको जानने और माननेसे ही वह विशेष समझमें आती है। भगवान् ही श्रद्धा-प्रेम करनेलायक हैं। उनकी कृपासे सब कुछ हो सकता है। भगवान्‌के नाम, रूप, लीला, गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य, महिमा, चरित्र सभी बहुत ही मधुर हैं। इसी प्रकार भगवान्‌का दर्शन, भाषण, स्पर्श, वार्तालाप, चिन्तन आदि सभी बहुत ही मधुर, रसमय, आनन्दमय, अमृतमय और प्रेममय है। ऐसा समझकर मनसे भगवान्‌का आह्वान करके उनका मनसे दर्शन करते हुए उनके साथ वार्तालाप और भाषण करके उनके दिव्य मधुर रसका आस्वादन करना चाहिये। इस प्रकार करनेसे भगवान्‌में प्रेम बढ़ सकता है। × × × ····को बदलेमें राम राम।

(२)

सप्रेम राम राम। तुम्हारा पत्र मिला। एकान्तमें अपने पूर्वपत्रके विषयमें बात करते समय सिद्धान्तकी बात छेड़ दी तो इसमें प्रेमके आगे बाँध लगानेकी कोई बात नहीं है। प्रेमभावके साथ-साथ सिद्धान्तकी भी आवश्यकता रहती है। इसके लिये तुमको किसी भी प्रकारका विचार नहीं करना चाहिये। प्राप्त करने योग्य स्थितिके प्राप्त न होनेका जो दुःख है, वह तो होना ही चाहिये और उसके लिये यथासम्भव प्रयत्न करना चाहिये। × × × प्रेमकी पूर्णताके विषयमें पूछा सो अनन्य प्रेमको ही पूर्ण प्रेम कहते हैं। भगवान्‌की अपने ऊपर पूरी कृपा समझनी चाहिये। यह बात मान लेनेपर परमात्माकी हर समय स्मृति रह सकती है एवं संसारके विषयभोगोंसे आसक्ति मिट सकती है। आसक्ति मिटनेपर पूर्ण प्रेम सहज ही हो सकता है। प्रभुसे अपनत्व मालूम होता है। यह बहुत ही आनन्दकी बात है। प्रेम होनेके लिये श्रद्धा और विश्वास होना भी आवश्यक है। कमजोरीको दूर करके प्रेम प्रदान करनेके लिये करुणभावपूर्वक भगवान्‌से स्तुति-प्रार्थना करनी

चाहिये। हम तुम्हारे मनकी बात जानते हों—ऐसी बात बिल्कुल ही नहीं है। भगवान् ही सर्वान्तर्यामी हैं, वे ही सब जानते हैं। अपने प्रति जो बात ध्यानमें आवे सो लिखनेके लिये लिखा सो ऊपर सब बातें लिखी ही हैं। भगवान्को हर समय याद रखना चाहिये, यही खास बात है। भगवान्के मानसिक दर्शन, भाषण और स्पर्श आदिको रसमय, आनन्दमय और प्रेममय समझकर उसका रसास्वादन करते रहना चाहिये, इससे भी प्रेम बढ़ता है। सबसे हरिस्मरण।

(३)

सादर प्रेमपूर्वक हरिस्मरण। × × × सांसारिक भोग-विलास, ऐश-आराम, स्वाद-शौकीनी आदि सभी विषय क्षणभङ्गुर, नाशवान्, अनित्य और दुःखरूप हैं। इनमें एक बार तो सुख-सा प्रतीत होता है, किंतु परिणाममें ये दुःखके ही देनेवाले हैं। अतः इनमें बिल्कुल ही आसक्त नहीं होना चाहिये। इसी प्रकार अधिक निद्रा, आलस्य, प्रमाद तथा दुर्गुण-दुराचार आदिको विषके समान समझकर उनका कतई त्याग कर देना चाहिये। यह मनुष्य-शरीर परमात्माकी प्राप्तिके लिये ही मिला है। उत्तम देश, उत्तम काल, उत्तम जाति और उत्तम धर्मकी प्राप्ति होनेपर भी यदि आत्माके उद्धारके लिये प्रयत्न नहीं करेंगे तो फिर कब करेंगे? इस प्रकार-की अनुकूल परिस्थिति सदा रहनेवाली नहीं है। संसार-के अन्य सभी कार्य तो आपके पीछे रहनेवाले आपके उत्तराधिकारी भी सँभाल लेंगे; किंतु अपने उद्धारका यह काम कोई दूसरा नहीं कर सकेगा। यह तो आप-के करनेसे ही होगा। इसलिये जबतक मृत्यु दूर है, शरीर स्वस्थ है, तबतक ही अपने उद्धारके लिये उत्तम-से-उत्तम कार्य बहुत शीघ्र ही कर लेने चाहिये, जिससे आगे चलकर पश्चात्ताप न करना पड़े।

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिंदक मंदमति आत्माहन गति जाइ॥

इस संसारमें भगवान्के सिवा आपका परम हितैषी और कोई भी नहीं है। माता-पिता, भाई-बन्धु, स्त्री-पुत्र, मकान-रुपये और सम्पत्ति आदि सभी क्षणभङ्गुर तथा नाशवान् हैं। कोई भी साथ जानेवाला नहीं है। औरकी तो बात ही क्या है, आपका शरीर भी यहाँ ही रह जायगा। केवल सत्संग-स्वाध्याय, भजन-ध्यान, सद्गुण-सदाचार और निष्काम सेवा आदि किये हुए सत्कर्म ही साथ जायँगे। इसलिये इनका सेवन विवेकपूर्वक तत्परता-के साथ करना चाहिये। आप सांसारिक क्षणभङ्गुर पदार्थोंको प्राप्त करनेके लिये जितना प्रयत्न करते हैं, उतना प्रयत्न यदि श्रद्धा-भक्तिपूर्वक भगवान्के लिये करें तो बहुत शीघ्र ही परमात्माकी प्राप्ति हो सकती है। यहाँ सब प्रसन्न हैं, वहाँ सब प्रसन्न होंगे? सबसे यथायोग्य।

(४)

सप्रेम राम राम! पत्र तुम्हारा मिला। × × × तुमने लिखा—'भगवत्प्रेम किस प्रकार प्राप्त हो?' सो भगवत्प्रेम भगवान्की कृपासे प्राप्त होता है और वह कृपा सबपर है; किंतु माननेपर फलती है। इसलिये अपने ऊपर भगवत्कृपा माननी चाहिये। तुमने लिखा कि गङ्गामें जाकर कोई वस्तु अशुद्ध थोड़े ही रहती है सो ठीक है; इसमें मेरी उपमा दी सो यह तुम्हारी सद्भावना है, पर मैं तो एक साधारण मनुष्य हूँ।

भगवान्के लिये विरह-वेदना जाग्रत् करना बहुत अच्छा है। वह विरह-वेदना उनके प्रति श्रद्धा और प्रेम होनेपर जाग्रत् हो सकती है। इसलिये विरह-वेदनाको जाग्रत् करना चाहिये। तुम्हारा मन भोगोंमें रचा-पचा लिखा सो भोगोंको नाशवान् और दुःखरूप समझकर उनसे वैराग्य करना चाहिये। अभिमान नहीं करना

चाहिये । भगवत्कृपा अनन्त है । अपने जितनी मानते हैं उससे बहुत ही ज्यादा है । इसलिये उसे खूब मानना चाहिये ।

तुमने लिखा—'भगवान् तड़पन पैदा क्यों नहीं करते, उन्हें इसमें क्या तकलीफ होती है ? आदि,' सो उनपर विश्वास करनेपर सब कुछ हो सकता है । इसलिये भगवत्कृपाको अपने ऊपर ज्यादा-से-ज्यादा मानकर विश्वास बढ़ाना चाहिये । × × × × ×

सद्विचार और दुर्विचार

(लेखक—श्रीप्रज्ञानन्दजी)

मनुष्य क्या है ?—एक विचारोंका पुलिन्दा है । विचार मानसिक क्रिया है । जिस प्रकार मकड़ा अपने भीतरसे तन्तुको उगलकर उसके द्वारा जाला बुनता रहता है और अन्तमें अपने ही बुने हुए जालेके अंदर आप बंद हो जाता है, उसी प्रकार मनुष्य अपने भीतरसे मानसिक विचारोंका जाल बुनता रहता है और उसमें अपने आप ही कैद हो जाता है । यदि वह सद्विचारोंका जाल बुनता है तो सद्विचारसे वह आबद्ध होता है और यदि दुर्विचारोंका जाल बुनता है तो दुर्विचारोंसे वह आबद्ध होता है ।

मनुष्यको यह स्वतन्त्रता मिली है कि वह चाहे तो सद्विचारोंमें रमण करे और चाहे तो दुर्विचारोंको गले लगाये । परंतु एक बार यदि दुर्विचारोंके जालमें फँस गया तो वह अपनी विचार-स्वतन्त्रताको खो देता है । दुर्विचारोंमें अभ्यस्त हो जानेके बाद वह दुर्विचारके प्रवाहमें सहज ही बहने लगता है । दुर्विचारोंको तिलाञ्जलि देकर सद्विचारोंमें रमण करना उसके लिये अति कठिन हो जाता है ।

अभ्यस्त दुर्विचार जीर्ण रोगके समान विनाशकी ओर ले जाते हैं । जिस प्रकार जीर्ण रोग असाध्य और दुःसाध्य होते हैं, उसी प्रकार अभ्यस्त दुर्विचार भी असाध्य और दुःसाध्य होते हैं । शरीरमें जब अधिक गहराईतक रोग अपना अड्डा जमा लेता है और मनुष्यको बल-वीर्यहीन बना देता है, पाचनक्रिया बिगड़ जाती है, शरीरमें रक्तका बनना ठीक तौरपर नहीं होता, चलने-फिरनेकी शक्ति जाती रहती है तो कहते हैं कि रोग असाध्य हो गया है । इसी प्रकार यदि रोग दीर्घकालतक अड्डा जमाये रहता है, परंतु मनुष्यके शरीरमें वैसी क्षीणता नहीं आती, वह बल-वीर्यहीन नहीं हो जाता तो कहते हैं कि रोग दुःसाध्य है, औषध सेवन करने और पथ्य ठीक रखनेसे कालान्तरमें रोगी रोगमुक्त हो सकता है ।

दुर्विचारका असाध्य रोगी सद्विचारका नाम भी नहीं सुनना चाहता । उसके लिये सारा जगत् दुर्विचारका अखाड़ा है । सद्विचार मृगमरीचिकाके तुल्य है । उसे विश्वास ही नहीं होता कि संसारमें वस्तुतः सद्विचारका भी अस्तित्व है । वह निरन्तर दुर्विचारोंमें ही रमण करता है, नरकके कीटके समान उसीमें उसे रस मिलता है । वह उससे अलग होना नहीं चाहता । यह दुर्विचारका असाध्य रोग रोगीको ले डूबता है ।

दुर्विचारका दुःसाध्य रोग पथ्य भोजन करनेसे, सत्सङ्गसे तथा सद्ग्रन्थोंके स्वाध्यायका निरन्तर सेवन करनेसे सुसाध्य हो सकता है । सत्सङ्गका अर्थ है अच्छे सङ्ग, भगवद्भावका सङ्ग, सद्विचारका सङ्ग करना; और असत्सङ्ग अर्थात् बुरे सङ्गका, भोगासक्तोंके सङ्गका, असद्विचारका त्याग करना ।

दुर्विचार संक्रामक रोग है । दुर्विचारमें अभ्यस्त आदमी जहाँ जाता है, अपने दुर्विचारके कीटाणुओंको

लेकर जाता है और समाजमें दुर्विचारका बीज वपन करता है। वह दुःसङ्गका पुतला होता है, आखिर वह समाजको देगा क्या ? उसके पास जो है उसे लुटाता है और समाजको दूषित करता है। अपरिपक्व विचार-वालोंके ऊपर दुर्विचारके कीटाणु बहुत शीघ्र, तत्काल असर करते हैं। परिपक्व विचारके आदमीके ऊपर दुर्विचारके कीटाणु असर नहीं करते।

सद्विचारका जीवन नन्दन वनके समान सुखद होता है। सद्विचारका अभ्यासी मनुष्य जहाँ जाता है, समाज-में स्वस्थ जीवनकी विद्युत्-शक्ति लेकर जाता है। लोगों-को सद्विचारमें प्रवृत्त करता है। भूले-भटकोंका मार्ग-प्रदर्शक बनता है। सद्विचारके द्वारा ही सभ्यता और संस्कृतिका उन्मेष होता है। जिस समाजमें सद्विचारकी साधना चलती है, वह समाज शक्तिशाली बनता है, महापुरुषोंको उत्पन्न करता है। इसी सद्विचारकी साधना-के द्वारा शक्ति प्राप्त करके भारतने सत्य और अहिंसा-के शस्त्रसे, उदयसे अस्ततक राज्य करनेवाले बृटिश साम्राज्यको पराजित करके स्वातन्त्र्य लाभ किया तथा संसारकी अनेक पराधीन जातियोंको स्वतन्त्रताका मार्ग दिखलाकर विश्वका महान् कल्याण किया। सद्विचारकी साधनाका चमत्कारिक प्रभाव होता है।

असद्विचारका अवलम्बन व्यक्ति और समाजको अधःपतनकी ओर ले जाता है। सद्विचार और असद्विचारकी कसौटी बाह्य जगत् है। मनुष्य सोचे कि बाह्य जगत्के बारेमें वह कैसा चिन्तन करता है, सत् या असत् ? संसार ही दर्पण है और उसके विषयमें अपने विचार ही अपना स्वरूप है। मनुष्य जो सोचता है, वही उसका जीवन है।

संसाररूपी दर्पणमें असद् दृष्टिसे देखनेपर मनुष्यको असत् ही दीखता है। पाप देखनेसे पापमयी वृत्ति होती है। पुण्य देखनेसे अपनी पुण्यमयी वृत्ति होती है। फिर तो—

'यादृशी भावना भवति तादृशी।'

पुण्य देखनेवाला पुण्यफलभाक् बनता है, पाप देखनेवाला पापफलभाक्। दूसरे शब्दोंमें कह सकते हैं कि पुण्य देखनेवाला पुण्यात्मा बनता है, पाप देखने-वाला पापात्मा। एक बार स्वामी रामतीर्थके पास दो कालेजके छात्र पहुँचे। एकने कहा—'स्वामीजी ! यह मुझसे कहता है कि मैं मरनेके बाद बिल्लीका जन्म पाऊँगा।' दूसरेने कहा—'स्वामीजी ! यह मुझसे कहता है कि मैं मरकर कुतियाके पेटसे जन्म लूँगा। आप ही बताइये क्या होगा ?'

स्वामीजीने उत्तर दिया—'जो दूसरेको कुतियाके पेटसे जन्मनेकी बात कहता है, वह स्वयं कुतियाके पेट-से जन्मेगा और जो दूसरेको बिल्लीके पेटसे जन्मनेकी बात कहता है, वह बिल्लीका बच्चा बनेगा।'

सच है, मन ही जगत् है। मन अच्छा तो जग अच्छा और मन बुरा तो जग बुरा। अतएव स्वामी रामतीर्थने कहा है कि 'सुधारकोंकी आवश्यकता है। दूसरोंका सुधार करनेके लिये नहीं, बल्कि स्वयं अपना सुधार करनेके लिये।' मनुष्य अपना शत्रु आप बनता है और आप ही अपना मित्र भी बनता है। जो अपने आपको ठीक रखनेकी चेष्टामें रत रहता है, वह अपना आप मित्र है और जो इसकी उपेक्षा करके परच्छिद्रान्वेषणमें लगता है, वह आप अपना शत्रु बनता है।

'आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः।'
(गीता)

साधनाके दो प्रकार

साधनाएँ दो प्रकारकी होती हैं। एक होती है किसी बाहरी प्रेरणासे की जानेवाली कर्तव्यरूपा और दूसरी होती है अन्तःप्रेरणासे होनेवाली सहज। प्रथम प्रकारकी साधना विवेकपूर्ण होती है, विवेक-सापेक्ष होती है और दूसरे प्रकारकी साधना विवेकातीत होती है, विवेक-निरपेक्ष होती है।

अन्तःप्रेरणासे होनेवाली साधनाके क्षेत्रमें कभी-कभी ऐसी भी स्थिति होती है, जिसमें ऐसी बात नहीं रहती कि साधक अपने किसी कामको या साधनको सोच-विचारकर करे।

इस स्थितिका दर्शन श्रीचैतन्य महाप्रभुके जीवनमें मिलता है। जब उन्होंने घर छोड़ा, उसके पहलेकी बात है। उन्हें श्रीकृष्णकी पुकार सुनायी दी। उन्होंने कहा—'मुझको श्रीकृष्ण पुकार रहे हैं।' वे समझदार थे और लोगोंने उनको समझाया, पर उनको तो श्रीकृष्णकी पुकार सुनायी देती थी। उन्होंने कहा—'अब तो श्रीकृष्णकी पुकार-ही-पुकार सुनायी देती है, अब और कुछ नहीं। बस, अब उधर ही जाना है।' फिर कोई विचार या विवेक या और कोई चीज उन्हें रोक नहीं सकी। गृह-त्यागके बाद भी यह पुकार सुनायी दी थी। यही हाल सिद्धार्थका हुआ।

गोपाङ्गनाओंने वंशीध्वनि सुनी और उनकी विचित्र स्थिति हो गयी। उस समयकी उनकी स्थितिके चित्रको देखें। कानोंमें वंशीकी ध्वनि सुनायी पड़ी। बस, उनके भय, संकोच, धैर्य, मर्यादा आदि सबको छीन लिया उसने उसी क्षण। वे उन्मत्त हो गयीं। वह एक ऐसी चीज थी, जिसने सब चीजोंको भुला दिया। वह एक अन्तर्नाद था। उनको यह भी याद नहीं रहा कि जीवनमें क्या करना है? उस समय उनके द्वारा जो व्यावहारिक कार्य हो रहे थे, सारे-के-सारे कार्य ज्यों-के-त्यों स्थगित हो गये। उसका वर्णन करते हुए भागवतकार कहते हैं कि हाथका ग्रास हाथमें ही रह गया; एक आँख आँजनेके बाद दूसरी आँख आँजनेसे रह गयी; शरीरमें अङ्गराग चन्दन लगा रही थी, वह अधूरा ही रह गया; वस्त्र पहनना आरम्भ किया, पर जितना जैसे पहना गया, उतना वैसे ही पहना गया; छोटे-छोटे बच्चोंको स्तन पिलाना आधेमें ही छूट गया और पतियोंकी सेवा-शुश्रूषा कर रही थी, वह वैसे ही रह गयी। एक दूसरीसे कुछ कहते भी नहीं बना। सब चल पड़ीं बड़े वेगसे।

यह पुकार, वह ध्वनि कुछ ऐसी आकर्षक थी, कुछ ऐसी अनन्यता लानेवाली थी कि उसने सर्वस्वका सहज त्याग करवा दिया। इस स्थितिमें यह बात नहीं रह जाती कि किसी चीजको विवेकपूर्वक त्याग करना है या वैराग्यसे त्याग करना है अथवा विवेक-पूर्वक किसी चीजको प्राप्त करनेके लिये सोच-समझकर जाना है। साधनाकी यह बहुत ऊँची स्थिति है, जो भगवत्कृपासे ही सुलभ होती है।

दूसरे प्रकारकी साधना विवेकपूर्ण होती है। विवेकपूर्ण साधनामें संसारके भोगोंको दुःखदायी, बन्धनकारक और अज्ञानकी वस्तु मानकर छोड़ा जाता है। भगवत्प्राप्तिका महत्त्व, उसका गौरव, उसके लाभ, परमानन्दकी प्राप्ति, बन्धनोंका कट जाना, मोक्षकी उपलब्धि, जन्म-मरणके चक्करसे छुटकारा आदि बातोंसे आकृष्ट, आश्वस्त और आस्थावान् होकर साधक साधनारूढ़ होता है। यह साधना भी बहुत ऊँची चीज है, पर यह साधना सविवेक है, वैराग्यपूर्ण है।

पर दूसरे प्रकारकी साधना ऐसी एक स्थिति होती है, जहाँ न विवेकका प्रवेश है और न वैराग्यको स्थान है। पर ये दोनों ही बलात् उसके साथ छिपे-

छिपे लगे ही रहते हैं। वास्तवमें वहाँ जीवनमें एक स्वाभाविक गति है। एक ऐसी स्वाभाविक गति, जिसमें कोई प्रयास नहीं। सागरोन्मुखी गङ्गाकी धाराकी तरह कोई भी तनिक भी प्रयास नहीं। गङ्गाकी धाराकी सागरकी ओर स्वाभाविक गति है। रास्तेमें आनेवाले बाधा-विघ्न अपने-आप टूटते चले जाते हैं। बड़ी बाधा आनेपर गङ्गाकी धारा उसके बगलसे निकल जाती है, पर वह रुकती नहीं। रुकना चाहिये नहीं, इसीलिये कि गतिमें स्वाभाविकता है। किधरसे बहना चाहिये, कहाँ जाना चाहिये, जानेपर समुद्रसे मिलकर क्या होगा, क्या मिलेगा—इन सब प्रश्नोंको गङ्गाकी धारा नहीं जानती। समुद्रकी ओर उसकी सहज स्वाभाविक गति है। इसी प्रकारकी एक स्थिति साधनामें होती है। इस स्थितिकी ओर संकेत करनेके लिये गोपाङ्गनाओंका उदाहरण दिया जाता है।

सांसारिक लोग उन परमोच्च स्तरपर स्थित गोपियोंको बहुत नीचे उतार लाते हैं और उनकी पावन-पावन प्रेमचेष्टाओंमें सांसारिकता देखते हैं। भोगकी कल्पना करते हैं। पर यह भोग-जगत्—यह भौतिक संसार तो बहुत नीचे रह जाता है। संसारके आगेके दिव्य लोक जिसे छू नहीं सकते, मोक्षकी संज्ञाका जहाँ अस्तित्व नहीं है। और-तो-और भगवान्‌को ढूँढ़नेकी भी जहाँ आवश्यकता नहीं रह जाती, वह गोपाङ्गनाओंका विशुद्धतम प्रेम-जगत् है।

जहाँतक श्रुति-प्रतिपाद्य साधन है, वहाँतक श्रुतियोंका अनुसंधान है। परंतु श्रुतियोंके द्वारा भगवान्‌की प्राप्ति नहीं होती। श्रुतियाँ जिनको खोज रही थीं, पर जिनको श्रुतियोंने नहीं पाया, उन भगवान् मुकुन्दको—श्रीकृष्णको गोपाङ्गनाओंने साक्षात् भजा, प्रत्यक्ष उनका सेवन किया। 'भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्।' प्रेमकी साधनामें गोपियाँ आदर्श हैं। नारदजी पुकारते हैं—'यथा व्रजगोपिकानाम्।'

अन्तःप्रेरणासे होनेवाली इस साधनामें न विवेक है, न वैराग्य है; न विवेकका त्याग है, न वैराग्यका त्याग है। साथ ही, न विवेककी आवश्यकता है और न वैराग्यकी। इस स्थितिकी साधनामें एक स्वाभाविक गति है, उसका एक स्वाभाविक स्वरूप है। यह स्वरूप जब कभी किसीके जीवनमें आता है, वह धन्य है।

श्रीचैतन्य महाप्रभुके जीवनमें इस तरहकी बात मिलती है। श्रीचैतन्य महाप्रभुका पहले नाम था श्रीनिमाई पण्डित। श्रीनिमाई पण्डित न्यायके प्रकाण्ड पण्डित थे। न्याय चलता ही है तर्कपर, न्यायका अर्थ ही है तर्कद्वारा किसी वस्तुको सिद्ध करना। श्रीनिमाई पण्डित न्यायके इतने बड़े पण्डित थे कि बड़े-बड़े दिग्गज न्याय-शास्त्री शास्त्रार्थमें उनसे पराजित हो चुके थे। अवस्था कम होनेपर भी श्रीनिमाई पण्डित नवद्वीपके सर्वोपरि नैयायिक थे। दूर-दूरसे बड़ी-बड़ी उम्रवाले प्रौढ़ विद्वान् युवक श्रीनिमाई पण्डितके पास पढ़नेके लिये आया करते थे। श्रीनिमाई पण्डितके गुरुजी भी नवद्वीपमें ही थे, पर वे विद्वान् गुरुजीके पास न जाकर श्रीनिमाई पण्डितके पास ही पढ़नेके लिये आया करते थे।

ऐसे श्रीनिमाई पण्डित गया गये और गयामें भगवान्‌के श्रीचरणकमलोंका दर्शन करके वहीं उनका जीवन पलट गया। उनकी साधना बिलकुल पलट गयी। गयासे लौटकर नवद्वीप आये और पूर्वाभ्यासवशात् पाठशाला गये। पढ़नेके लिये आये हुए विद्यार्थियोंने प्रणाम किया तथा पढ़ानेके लिये प्रार्थना की। श्रीनिमाई पण्डित बोले—

राम राघव राम राघव राम राघव रक्ष माम्।
कृष्ण केशव कृष्ण केशव कृष्ण केशव पाहि माम्॥

विद्यार्थियोंने यही समझा कि सम्भवतः यह मङ्गलाचरण है। थोड़ी देर बाद फिर विद्यार्थियोंद्वारा पाठ

पढ़ाये जानेकी प्रार्थना किये जानेपर श्रीनिमाई पण्डितने फिर वही दोहरा दिया और कहा—'पाठ ही तो दे रहा हूँ।' विद्यार्थियोंने जाकर गुरुजी आचार्य श्रीगंगादासजीसे वस्तुस्थितिका निवेदन कर श्रीनिमाई पण्डितजीको समझानेके लिये प्रार्थना की। गुरुजीने श्रीनिमाई पण्डितको बुलाकर पूछा—'क्या तुम्हारे द्वारा ऐसा हुआ है ?' श्रीनिमाई पण्डितने कहा—'हाँ !' गुरुजीने समझाते हुए कहा—'अब ठीकसे पढ़ाना।' श्रीनिमाई पण्डितने कहा—'हाँ, प्रयत्न करूँगा। पर मैं क्या करूँ, मेरे वशकी बात नहीं है।' पर प्रयत्न कैसे हो ? चित्तकी तो दशा ही बदल गयी। यह परिवर्तन अपने-आप ही हुआ था, विवेकजनित तो था नहीं। फिर वही कीर्तन चला। वे विद्वान् विद्यार्थीगण लौट आये और फिर बादमें निराश होकर अपने-अपने घर वापस चले गये। श्रीनिमाई पण्डितके कीर्तनमें ऐसी मत्तता होती, वायुमण्डलपर उसका ऐसा प्रभाव होता कि जो भी समीपसे निकलता, वही नाचने लगता। अतः नवद्वीपके पण्डितोंने उस मार्गसे निकलना बंद कर दिया। इतना प्रभाव उस स्वाभाविक कीर्तनका पड़ा।

ऐसी स्थितिमें भगवान्के प्रति सर्वस्व सहज ही समर्पित हो जाता है। ऐसी ही स्थिति थी—ओरछाके श्रीहरिरामजी व्यासकी। श्रीव्यासजी शास्त्रोंके प्रकाण्ड पण्डित थे। जहाँ जाते, ग्रन्थोंके छकड़े साथ-साथ चलते। कोई भी शास्त्रार्थमें उनके सामने टिक नहीं पाता था। पर जब जीवनमें परिवर्तन आया तो सारा कुछ बदल गया। सारी पोथियाँ छूट गयीं। निर्ग्रन्थ हो गये। सारी ग्रन्थियाँ वस्तुतः टूट गयीं और वृन्दावनमें वास किया। एक बार श्रीओरछा-नरेशजीने श्रीव्यासजीको बुलाया। वे नहीं गये तो उनको बुलानेके लिये अपने दीवानजीको भेजा। दीवानजीको आया हुआ देखकर श्रीव्यासजीको बड़ी ही वेदना हुई। वृन्दावनसे जाना न पड़े, अतः श्रीव्यासजी एक-एक पेड़ और एक-एक लतासे लिपट-लिपटकर रोने लगे। सबसे कहने लगे—'देखो भाई ! मुझे छोड़ना मत।' उनकी जाने लायक स्थिति नहीं देखकर श्रीदीवानजी यों ही लौट आये।

यह साधनाकी एक स्थिति है जो अपने-आप होती है। बनानेसे नहीं होती। भगवत्कृपासे ही ऐसी स्थिति जीवनमें अभिव्यक्त होती है। परंतु यह स्थिति भगवत्कृपासे वहीं व्यक्त होती है, जहाँ भूमिका तैयार रहती है। हर जगह तो व्यक्त होती नहीं। अतः इस भूमिकाके लिये प्रस्तुत होना है।

यह सदा ध्यानमें रखनेकी बात है कि मनुष्यका जीवन कदापि-कदापि भोगके लिये नहीं है। भोगके लिये मनुष्य-जीवन है—इस संकल्पको मनसे सर्वथा ही उठा देना चाहिये। यह बिल्कुल भ्रम है और अज्ञान है। पाप है। मानव-जीवन एक बहुत बड़ी निधि है और इसको खो देना बहुत बड़ा अपराध है। यह अपराध भगवान्के प्रति है।

कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

भगवान्की दी हुई परम कृपापूर्ण सुविधाको जो अपने प्रमादसे हटा देते हैं, वे इस कृपा-प्रसादका तिरस्कार करते हैं और भगवान्के प्रति बड़ा अपराध करते हैं। इसीलिये वे आत्महत्यारे हैं।

मनुष्य-जीवनका लक्ष्य भोग है, इस भावनाका पूर्णतः परित्याग कर देना चाहिये। भोगके महत्त्वके मनसे निकलते ही बहुत-से झंझट अपने-आप मिट जाते हैं। निन्दा-स्तुति, मान-अपमान—यह सब केवल अपनी मान्यताकी बात है। इसी बखेड़ेमें हमारा सारा जीवन बीत रहा है। देश या जाति या विश्वके नामपर जो भी उधेड़-बुन चलती है, है तो भौतिक जीवनको लेकर ही और भौतिकतामें कभी सफलता मिलती नहीं। प्रकृतिके विस्तारका अन्त नहीं है। भोगकी आकाङ्क्षा

चाहे व्यक्तिके लिये हो या समष्टिके लिये हो, यदि किसी जीवनमें है, तो असफलता ही हाथ लगेगी। तृष्णा कभी समाप्त होती नहीं। थोड़ा पानेवालेका थोड़ा बाकी रहता है और ज्यादा पानेवालेका ज्यादा बाकी रहता है।

भोग-जीवनमें आस्था और भोग-जीवनकी लिप्सा ही सारे अनर्थोंकी जड़ है। इसमेंसे हम सभीको निकलना है। जो निकल गया, वह निकल गया। जो निकला नहीं, उसे निश्चित-निश्चित पछताना पड़ेगा। इसमें कोई संदेह नहीं। चाहे किसीकी समझमें आवे या न आवे, समझमें आकर स्वीकार करे या न करे, पर सत्य कभी असत्य हो नहीं सकता। मनुष्य-जीवनको प्राप्त करके जो भगवत्प्राप्तिके प्रयासमें नहीं लगा, उसको अवश्यमेव पछताना पड़ेगा।

इस अवसरके हाथसे निकल जानेपर क्या बचेगा? अतः जीवनमें मोड़ लाना है। भोगोंकी ओर उन्मुख जीवनको भगवान्‌की ओर लगाना है। भगवान्‌के सम्मुख होना है। गति मन्द हो तो कोई बात नहीं। एक ही पग आगे बढ़ पाये तो कोई चिन्ता नहीं, पर भोगोंको पीठ देकर भगवान्‌की ओर बढ़ना है। भगवान्‌की ओर हम मुख करेंगे तो भगवान् हमारी ओर मुख करेंगे। भगवान्‌की ओर हम चलेंगे तो भगवान् हमारी ओर चलेंगे। परंतु हम चलेंगे अपनी चाल और भगवान् चलेंगे अपनी चाल। भगवान्‌ने पहुँचनेका संकल्प किया तो उनको पहुँचते क्या देर लगेगी? भगवान्‌के संकल्पमें संकल्प, संकल्पानुसार कार्य और कार्यकी सिद्धि—तीनों एक साथ होती हैं। इसीलिये उनका नाम सत्य-संकल्प है। भगवान्‌की ओर मुख होनेसे भगवान्‌के मिलनमें विलम्ब नहीं होगा।

भगवान्‌की ओर सम्मुख होनेकी कसौटी क्या है? बिलकुल सीधी बात है। भोग सुहाये नहीं। भोगोंसे विमुख होनेपर वे सुहायेंगे कैसे? यदि भोग सुहाते हैं तो हम उनके सम्मुख हैं। भोगोंके सम्मुख और भगवान्‌के विमुख होनेसे सुख और शान्ति नहीं मिल सकती।

राम बिमुख सपनेहुँ सुख नाहीं।

वे लोग अभागे हैं जो भगवान्‌का परित्याग करके विषयोंसे अनुराग करते हैं।

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी॥

सौभाग्यशाली कौन है? जो विषयोंका वमनवत् परित्याग कर देता है और श्रीहरिके चरणकमलोंसे अनुराग करता है।

रमाबिलास राम अनुरागी। तजत बमन इव नर बड़भागी॥

भोगोंसे विमुखता और भगवान्‌की ओर सम्मुखता, यहींसे मानवकी मानवताका आरम्भ होता है। अतः सभीको भगवत्साधनामें लगना चाहिये। जो लगे हैं, उनकी सहायता करनी चाहिये। साधनामें लगे हुए किसीको कभी हतोत्साहित नहीं करना चाहिये; क्योंकि असली काम तो वही कर रहा है। साधनामें हतोत्साहित करना पाप है।

साधक संसारकी परवा नहीं करे। सांसारिक हानि कोई हानि नहीं है। संसारमें होनेवाली हानिकी चिन्ता न करे। सांसारिक हानिकी, लौकिक मान-अपमानकी, किसी प्रकारके अभावकी परवा न करे और साधक अपनी साधनामें लगा रहे। जगत्‌के लोग तिरस्कार कर सकते हैं। जगत्‌के लोग उसी साधुका अधिक आदर करते हैं जिसके आशीर्वादसे और अधिक भोगोंके प्राप्त होनेकी सम्भावना हो। वैराग्यके नामपर विरक्त भगवत्प्रेमी साधु-संतोंका आदर करनेवाले लोग बहुत थोड़े होते हैं। जगत्‌के भय और प्रलोभनोंसे अत्यन्त उपरत होकर सतत साधना करता रहे। भगवान्‌की अखण्ड स्मृति बनी रहे। सर्वोत्तम यही है कि जगत्‌की स्मृति हो ही नहीं। इस विवेकपूर्ण

साधनामें सतत संलग्न रहनेसे ही उस भूमिकाका निर्माण होता है, जहाँ भगवत्कृपासे उस दिव्य साधन-स्थितिकी अभिव्यक्ति होती है, जो विवेकातीत है और पूर्णतः निरपेक्ष है। जिस स्थितिके प्राप्त होनेपर जीवन धन्य हो जाता है, कुल पवित्र होता है, जननी कृतार्थ होती है और धरती धन्य होती है तथा वह इतना पवित्र हो जाता है कि उसके जीवनमें पवित्रता-की धारा बह निकलती है जो जगत्के पाप-तापग्रस्त प्राणियोंको शीतल शान्तिका पान कराकर धन्य करती है।

मानवताकी सेवा—ईश्वरकी सच्ची पूजा

[मनुष्यका देवत्व प्रकट करनेवाली सत्य घटना]

(लेखक—डा० श्रीरामचरणजी महेन्द्र एम्० ए०, पी-एच्० डी०, विद्याभूषण, दर्शनकेसरी)

न पापासो मनामहे नारायासो न जल्हवः।
यदिन्न्विन्द्रं वृषणं सचा सुते सखायं कृणवामहै॥
(ऋग्वेद ८ । ६१ । ११)

अर्थात् अन्तःकरण यदि मलिन और अपवित्र बना रहे, तो परमात्माकी उपासना भी फलवती न होगी। अतः ईश्वरकी उपासना निष्पाप हृदयसे करें।

अन्तरात्माका हलकापन

बहराइचमें एक विषादमय घर। वातावरण नैराश्यसे पूर्ण आवृत है। करुण वेदनासे परिपूर्ण विलाप करती हुई 'हाय! वे जाते रहे! हमें रोता छोड़ चले गये!' दुःखभरी चीत्कारें समीपके वातावरणको चीर रही हैं। शायद कोई मौत हो गयी है।

मातमपुर्सीके लिये लोग घरके बाहर एकत्रित हो रहे हैं। मौतका दुःखद समाचार सुनकर शवके दाह-संस्कारके लिये पास-पड़ोसी इकट्ठे हो रहे हैं। सभीके मुख आन्तरिक क्लेशसे मुरझाये-से हुए हैं, जैसे सूखते हुए वृक्षके मुरझाये पुष्प!

यों तो मृत्युपर सबका क्लेश स्वाभाविक है, किंतु इस व्यक्तिके मरनेसे आज सभीको विशेष विक्षोभ है। परिवारके मुखियाके मरते ही अब बेचारोंके पास कमाकर खिलानेवाला और कोई नहीं बचा है। छोटे बच्चे बिलख रहे हैं। चौंतीस वर्षकी विधवा पछाड़ खा-खाकर मूर्छित हो रही है।

पूरा परिवार ही जैसे संसाररूपी सागरमें डूब गया है। क्रूर मृत्यु कभी भी, समय-असमय मनुष्यको धर दबाती है। उसपर छाये हुए उत्तरदायित्वतकको नहीं देखती। जीवनकी यह क्षणभङ्गुरता ही वैराग्यके पथका प्रथम सोपान है।

हाय! अब इस परिवारके बच्चोंको कौन पालेगा? कौन पढ़ायेगा? कौन उस विधवाको सान्त्वना देगा? कन्याओंके शिक्षण और विवाहका कौन प्रबन्ध करेगा?

चारों ओर अँधेरा-ही-अँधेरा दिखायी देता है। मृत्यु भी कितनी निर्भय है!

मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्।
तस्मात् त्वां मृत्योर्गोपतेरुद् भरामि स मा बिभेः॥
(अथर्ववेद ८ । २ । २३)

अर्थात् यह मृत्यु मनुष्य, जीव, जन्तु किसीको भी नहीं छोड़ती। यह मृत्यु सबसे शक्तिशाली है। इसका दर्जा सबसे ऊपर है। यदि तू इससे बचना चाहता है तो अपने आत्माको जान और ज्ञानवान् होकर मृत्युसे डरता रह।

गुजर-बसरकी बात तो बादमें आयेगी, अभी तो इस शवकी अन्त्येष्टि-क्रियाका सवाल है। इसमें डेढ़-दो सौ रुपया व्यय होता है। पैसा पास न हो, तो शवका दाह-संस्कारतक दुर्लभ है।

जहाँ अचानक मौत हो जाय, घरमें पैसा न हो, कोई दूसरा कमानेवाला न हो; महँगाईके इस युगमें आकस्मिक मौत विधाताका बड़ा कठोर उपहास है। मृत्युका क्षोभ तो होता ही है, दाह-संस्कारतकके

लिये पैसेकी मजबूरी काँटोंकी तरह चुभती है। शरीफ सफेदपोश आदमीको अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा और लोक-लाजका भी ध्यान रखना पड़ता है।

लीजिये शोक मनाने और सहानुभूति दिखानेवालोंका जमघट हो गया। दाह-संस्कारके लिये जानेकी तैयारी शुरू होनेवाली है। रोने-पीटनेके बीचमें धीरे-धीरे यह फुसफुसाहट सुन पड़ती है। आनेवाले कानाफूँसी कर रहे हैं—

'क्यों, कुछ रुपयेका प्रबन्ध हो जाय, तो दाह-संस्कारके लिये—लकड़ी, घी, कफन इत्यादिके लिये आदमियोंको बाजार भेजा जाय ?'

'विधवाके पास पैसे नहीं हैं ? पैसेका सवाल विकट है।'

'डेढ़-दो सौसे भी अधिक रुपया खर्च होगा।'

'नहीं, नहीं, यह भी कम है। महँगाईका जमाना है। इज्जतदार घर है। शायद इससे भी अधिक खर्च होगा। तेरह रुपये किलो घी बिक रहा है।

'तो फिर चंदा कर दाह-संस्कारके लिये पैसे इकट्ठे कर लिये जायँ। किससे कितना-कितना चंदा लें ? दो-दो रुपये ?'

'छिः छिः चंदेसे शव उठेगा! बड़ी लज्जाकी बात होगी।'

'काफी देर होती जा रही है। इनके यहाँ कोई ऐसा रिश्तेदार भी तो मौजूद नहीं।'

इस प्रकार सबके सामने मुर्देको फूँकनेके लिये पैसेकी विकट समस्या मुँह बाये खड़ी थी ? कौन कितना चंदा दे ? किंतु यह रकम व्यर्थ ही कोई क्यों फेंके ? दानका तो दिखावा होता है। वह तो बदलेमें बहुत अधिक पानेका बयाना होता है। यहाँ दिखावा—बयाना तो सम्भव था नहीं।

मनुष्यकी महानता, उसकी दान-प्रवृत्ति, संकटमें गुप्त दान, गुप्त सहायता और बिना माँगे सहायता देनेमें होती है। पर ऐसा गुप्त दानी इस भीड़में कोई नहीं दीखता। लोगोंमें बातें चल ही रही थीं कि नगरके वयोवृद्ध पं० शारदा महाराज आते हुए दिखायी दिये। वे भी आकर थोड़ी देर चुपचाप बैठकर लोगोंकी खुसर-पुसर सुनते रहे। पैसेका कैसे इंतजाम हो ? यही विकट समस्या सबको उलझनमें फँसाये हुए थी। कोई भी देनेको तैयार न था।

इतनेमें एक दैवी चमत्कार हुआ।

'मित्रो! दाह-संस्कारके लिये ये रहे रुपये!' शारदा महाराजने अपनी जेबसे बटुवा निकालते हुए कहा—'यह लीजिये, पाँच सौ रुपये! इस मौकेपर इतने रुपयोंसे आपका काम चल जायगा।'

'पाँच सौ!' इतने रुपयोंकी सहायता! इसमें तो बहुत रुपये बच जायँगे। ओफ! यह ईश्वरका क्या करिश्मा था! सबकी आँखें वयोवृद्ध महाराजपर लग गयीं! आदमीके शरीरमेंसे जैसे प्रत्यक्ष ईश्वर ही बोल रहे थे!

संकटके समय यह पाँच सौ रुपयेकी आर्थिक सहायता मानो परमात्माके घरसे भेजी गयी सात्त्विक सहायता थी! अंधकारमें दैवी प्रकाश था। रुका हुआ रथ, जैसे यह सहायता पाकर आगे खिसक रहा था।

खूब रहा। वाह! कमाल हो गया। दान हो तो ऐसा हो। ऐन मौकेपर पहुँचकर एक गरीब परिवार-की सहायता की है और उनकी प्रतिष्ठाको बनाये रक्खा है। इस उदार दानसे वहाँ सभी प्रभावित थे। तरह-तरहके उत्तमोत्तम शब्दोंमें सभी उनकी प्रशंसामें कुछ-न-कुछ कह रहे थे। 'दानी हो तो शारदा महाराज-ऐसा हो। पाँच सौ रुपये दे दिये। वाह! कमालके दानी हैं!'

'लो भाई! लो, दाह-संस्कारके लिये अब सब सामान खरीद लाओ।'

कुछ आदमी लकड़ीका प्रबन्ध करने श्मशानघाट दौड़ गये, कुछ कफन लेने बजाजखाने; कुछ घी-चन्दन इत्यादिका इंतजाम करने चले गये। अब रुपयेकी मदद आ जानेसे सब मन-ही-मन कुछ हलके-पनका अनुभव कर रहे थे। रुपयेमें भी अजीब शक्ति है।

थोड़ी देरतक तो शारदा महाराज कुछ न बोले। सब कुछ सुनते रहे। दाह-संस्कारके प्रबन्धका कार्य देखते रहे।

एक सज्जन बोले—'महाराज! आपने वक्तपर रुपया देकर हम सबकी बहुत सहायता की है। इस घरकी प्रतिष्ठा बचा ली है।'

दूसरेने कहा—'सचमुच दाह-संस्कारसे पहले ही मित्रके घर पहुँचकर उसके प्रबन्धकोंको पाँच सौ रुपयेकी गुप्त सहायता दे देना बड़ा उत्तम धार्मिक कार्य है। मित्र हो तो ऐसा ही हो, जो संकटके समय अपने मरे हुए मित्रकी प्रतिष्ठाकी रक्षा करे। वही सच्चा दोस्त कहलानेका अधिकारी है। शारदा महाराज! आप धन्य हैं। आप-जैसे दानियोंको पाकर मानवता धन्य हुई।'

'नहीं, आप ऐसा न कहें! मैं इतना ऊँचा नहीं हूँ।' शारदा महाराज बोले।

'यह क्या कह रहे हैं?' सबके कान उधर ही लग गये। सभी कान ध्यानपूर्वक सुनने लगे कि आखिर क्या रहस्य है? वे क्या स्पष्टीकरण कर रहे हैं?

शारदा महाराज बोले—

'बात यह है कि मैं यह पाँच सौ रुपयेकी रकम गुप्त दान नहीं कर रहा हूँ। रहस्य कुछ और ही है······।'

'तो फिर क्या भेद छिपा है?'

'कहिये, क्या स्पष्ट करना चाहते हैं?'

वे कहने लगे रहस्य यह है कि 'मैंने अपने इन स्वर्गीय मित्रसे ये पाँच सौ रुपये बहुत दिन हुए उधार लिये थे। उस समय इनके पास रुपये थे। यह भेद वे और मैं, हम दोके अलावा कोई नहीं जानता था। मेरे इन उदार स्वर्गीय मित्रने न कभी अपने रुपये वापिस माँगे और मेरी गलती यह हुई कि मैंने उनका यह धन उन्हें वापिस भी नहीं लौटाया। यह बात चुपचाप यों ही सबसे छिपी रही। मेरी सामाजिक प्रतिष्ठाका ये बड़ा ख्याल करते थे। रुक्का-परचा लिखाने या दूसरोंके सामने उधार लिये हुए रुपयेका जिक्र करनेसे मेरी इज्जतमें बट्टा लगेगा, मेरे आत्म-स्वाभिमानको ठेस लगेगी, यह सोचकर उन्होंने कभी इस उधार ली हुई रकमका जिक्र, प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपमें आजतक किसीसे नहीं किया। कैसे उदार थे वे।'

यह कहकर थोड़ी देर वे चुप रहे। अपने नेत्रोंको पोंछते रहे। फिर आगे बोले—

'उनके निकट-सम्बन्धियों—पत्नी, पुत्रतकको इस उधारकी रकमका कोई पता नहीं था। उसके सम्बन्धमें मैं जानता था या वे! तीसरा कोई नहीं! हाय! अब वे तो दुनियामें रहे नहीं, सिर्फ मैं ही इस रहस्यको जाननेवाला रह गया! मुझे जैसे ही उनकी आकस्मिक मृत्युका दुःखद समाचार मालूम हुआ, मैंने तुरंत पाँच सौ रुपयेका प्रबन्ध किया और उन्हें देकर मैं दाह-संस्कारके पूर्व ही उनके ऋणसे उऋण हो रहा हूँ। यह धन कर्जकी अदायगी है। इन्हींका है। न दान है, न उदारता है। कृपा कर इस धनको उन्हींके अन्तिम संस्कारमें लगा दीजिये। बचे सो उनकी धर्मपत्नी और पुत्रोंको दे दीजिये। आजतक उन्होंने कभी अपने कर्जका तकाजा नहीं किया था। आज इस कर्जको अदा कर मैं अपनी अन्तरात्मामें हल्केपनका अनुभव कर रहा हूँ।'

यह स्पष्टीकरण करते-करते वयोवृद्ध शारदा महाराजके नेत्रोंमें गरम आँसू आ गये!

यदि वे बेईमान होते तो इस कर्जेका भेद किसीको भी न बताते और बड़ी आसानीसे रुपये मार लेते। अविदित ऋण तो मरा हुआ ही होता है। न उसका रहस्य कोई जानता है, न वह वसूल ही होता है।

लोगोंको उनकी ईमानदारी देखकर आश्चर्य हुआ। उन्होंने बिना माँगे ही मरे हुए व्यक्तिका गुप्त ऋण लौटा दिया था।

कितने गौरवकी बात है कि हमलोगोंके बीच ऐसे ईमानदार देवपुरुष अब भी मौजूद हैं। ऐसे लोगोंके देवगुणोंसे ही पृथ्वीपर स्वर्ग आयेगा। चाहे कोई जाने या न जाने, जो वायदा कर लिया उसपर जमे रहना, अपने वचनोंकी रक्षा करना, ईमानदारी बनाये रखना——ये देवताओंके गुण हैं। इनसे प्रकट होता है कि मनुष्य ईश्वरका पुत्र है।

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे।
यशसं वीरवत्तमम्॥
(ऋग्वेद १।१।३)

अर्थात् हम ईश्वरके बनाये सात्त्विक और ईमानदारीके नियमोंसे ही धन कमायें। बेईमानीका धन सदा हमसे दूर रहे। अनुचित रीतिसे कमाया धन हम न रक्खें। हम सदा—आजन्म धर्मसे कमायें और धर्ममें ही खर्च करते रहें।

——◦◦◦✽◦◦◦——

श्यामका स्वभाव—६

(लेखक—श्रीसुदर्शनसिंहजी)

असुरोत्तम वृत्रने श्यामका स्वभाव ठीक पहिचाना था। युद्धभूमिमें छिन्नबाहु असुर वृत्र इसीसे अपनेको मारनेके लिये उद्यत वज्रपाणि इन्द्रको सम्मुख देखकर उनसे निर्भय स्वरमें कहता है—

त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्-
पतिर्विधत्ते पुरुषस्य शक्र।
ततोऽनुमेयो भगवत्प्रसादो
यो दुर्लभोऽकिंचनगोचरोऽन्यैः॥
(श्रीमद्भा० ६। ११। २३)

'इन्द्र! मेरे स्वामी अकिंचन-गोचर हैं। जिन्होंने अपना 'स्व' कुछ भी बना रक्खा है, उनको मेरे स्वामीकी कृपा नहीं दीख सकती। तुम जानते हो—मेरे नाथ कैसे कृपा करते हैं? वे अपने जनोंके अर्थ, धर्म, कामकी प्राप्तिके प्रयत्नको नष्ट कर देते हैं। इस त्रिवर्ग-प्राप्तिके प्रयत्नके विनाशसे भगवत्कृपाका अनुमान हो जाता है।'

श्रीकृष्णका स्वजन जब भटकता है, जब अपने परम प्रेमास्पदसे दूर होता है, जब जन्म-जन्मके संस्कार उसे दुर्बल करते हैं, मायाका चाकचिक्य उसे मोहित करता है, तब मोहनकी माधुरीके स्थानपर उसे धन, भोग या धर्म-स्वर्ग अथवा यश-कीर्ति प्रिय लगते हैं और इनकी प्राप्तिके लिये वह प्रयास करता है।

श्रीकृष्ण तो अपनाकर त्यागना जानता नहीं! एक बार जब इसे आपने अपना बना लिया, अब आप चाहें तो भी यह आपको अपनेसे दूर जाने देनेसे रहा। बड़ा नटखट, बड़ा चपल है यह मैया यशोदाका कुमार। आप प्रयत्न करते हैं धन पानेके लिये, भोग जुटानेके लिये अथवा स्वर्ग-यश आदिके लिये कोई धर्मानुष्ठान करते हैं और आपके प्रयासको इसके अदृश्य करकमल असफल कर देते हैं। आपका श्रम, आपकी सावधानी, आपकी निपुणता, आपके सहायक एवं उपकरण—जब कन्हाई किसी प्रयासको असफल करनेपर उतारू है तो यह सब क्या अर्थ रखता है।

श्रीकृष्णने स्वयं कहा है—

यस्याहमनुगृह्णामि हरिष्ये तद्धनं शनैः।
(श्रीमद्भा० १०। ८८। ८)

'जिसपर मैं कृपालु होता हूँ—उसका धन धीरेसे चुरा लेता हूँ।'

आप केवल माखनचोर या चित्तचोर ही नहीं हैं—अर्थचोर भी हैं, इसे समझ लेना चाहिये। 'शनैः' पता भी नहीं लगता कि यह आर्थिक हानि क्यों हुई—क्यों हो रही है और हो जाती है। यह धनकी चोरी आप करते हैं—कृपा-परवश होकर। जब कृपालु ही हुए हैं तो अधूरे क्यों हों? धन चुरा लिया, धनके लिये किये जानेवाले प्रयत्न निष्फल—नष्ट करते चले गये। दुखी होकर—कंगाल जानकर स्वजनों, इष्ट-मित्रोंने तिरस्कृत कर दिया। अब रहा क्या? 'हारेको हरिनाम।'

जब व्यक्ति सर्वत्रसे निराश हो जायगा, उसके प्रयत्न सफल नहीं होंगे, कोई संसारमें सहायक-स्वजन नहीं दीखेगा तब विवश होकर वह इसको पुकारेगा, उसे क्या पता कि यह उसे अपना बनानेको उतावला हो रहा है और उसकी सब असफलता इसीके करोंकी करतूत है।

ऐसा नहीं है कि कन्हाई सबको कंगाल ही बनाता है या उसके जन दर-दरकी ठोकर खाते, भोगविवर्जित एवं लोकतिरस्कृत ही होते हैं। श्यामको सुख मिलता है स्वजनोंको सुख, सम्मान, सुविधा देकर। महाराज युधिष्ठिरको राजसूययज्ञ कराके सम्राट् बनाया श्रीकृष्णने। दुर्योधनकी समस्त कुटिलताओंको ध्वस्त करके पाण्डवोंको महाभारत-युद्धमें विजयी बनाया श्यामने।

सुदामाको कंगालसे कुबेराधिक वैभवसम्पन्न किसने किया? किसने भीष्मको धर्मके परम मर्मज्ञके रूपमें लोक-प्रख्यात किया? उग्रसेनको सम्राट् बनानेवाला कौन?

सुग्रीव और विभीषणको सिंहासन मिलता, यदि श्री-रघुनाथ कृपा न करते?

ध्रुवको ध्रुवपद और प्रह्लादको दैत्येश्वर बनाकर लोक-सम्मानित करनेका श्रेय किसे है? बलिपर भगवान् वामन कृपा न करते—कौन जानता उन्हें? वे इन्द्र बने भी रहते, कितने लोग जानते हैं वर्तमान इन्द्रका नाम? पता नहीं कितने इन्द्र हुए—गये—उनको कोई क्यों स्मरण करे?

विदुर, हनुमान्‌की बात छोड़िये—गृध्र, गणिकादिको जो लोक-सुयश मिला है, किसका अनुग्रह है यह ?

श्रीपतिके पदपङ्कजोंको छोड़कर भी कहीं लक्ष्मी स्थिर रह सकती हैं ? अर्थ और काम तो श्रीदेवीका अनुग्रह ही है या और कुछ ? कन्हाईकी कृपादृष्टिके बिना यह अनुग्रह सचमुच मिलता है किसीको ?

आप धर्मकी पूछते हैं ?

'धर्मस्य प्रभुरच्युतः ।'

यह अच्युत ही धर्मका स्वामी है। इसको त्यागकर रहनेवाला धर्म तो अधर्म है।

अब आप कहेंगे—'परस्पर विपरीत बात मत कहिये !' किंतु परस्पर विपरीत बात मैंने कही नहीं है। वैसे कन्हाई है ही त्रिभंग—टेढ़ा ! इसकी अटपटी चाल कुछ कठिनाईसे समझमें आती है।

'त्रैवर्गिकायासविघातमस्मत्पतिर्विधत्ते पुरुषस्य ।'

वृत्र असुर सही, किंतु महाभागवत है। उसकी बात बहुत महत्त्वकी, बहुत पतेकी है। 'पुरुषस्य—निजजनस्य' जो श्यामके अपने स्वजन हैं, केवल उनके सम्बन्धकी यह बात है। दूसरोंको अपना प्रारब्ध भोगना चाहिये। कृष्णको उनके सम्बन्धमें टाँग अड़ानेका अवकाश नहीं। कोई अभिरुचि उसकी उन लोगोंमें नहीं, जो उससे तटस्थ हैं।

'आयासविघातं विधत्ते' मनुष्य आयास—परिश्रम क्या बिना आसक्तिके करता है ? जब त्रिवर्गमें—अर्थ, धर्म, काममें कहीं आसक्ति होगी, किसीको पानेकी तृष्णा होगी; तभी तो उसकी प्राप्तिके लिये प्रयास होगा। यह कोई भली बात है कि कोई व्रजेन्द्रनन्दनका अपना जन होकर भी अन्यत्र चित्तको आसक्त बनावे। इस त्रिभुवनसुन्दर आनन्दकन्दको छोड़कर भी क्या और कुछ स्पृहणीय है ?

किया क्या जाय ? मन दुर्बल है। जन्म-जन्मान्तरके संस्कार पड़े हैं चित्तमें। इन संस्कारोंसे विवश प्राणी अनेक बार भटक जाता है। माया अत्यन्त प्रबल है। उसके प्रलोभनोंमें बड़े-बड़े पड़ जाते हैं। अतः अर्थ, काम, धर्मकी स्पृहा जाग जाती है। अनेक बार बुद्धि भ्रममें पड़ जाती है। व्यक्ति अपनी दुर्बलतासे या भ्रान्तिवश त्रिवर्गकी स्पृहा करने लगता है। उसे पानेका प्रयास करने लगता है।

स्वजन दुर्बलताके ग्रास बन जायँ, भ्रान्त हो जायँ, तो क्या श्याम भी प्रमाद करने लगे ? व्रजराजके कुमारको प्रमाद स्पर्श नहीं करता। वह अपने जनोंको भटकता देखता है तो अधिक सतर्क हो जाता है। वह उनके प्रयासको नष्ट कर देता है। उन्हें अपनेसे दूर नहीं जाने देता।

कन्हाई धन-वैभव, सृष्टिके समस्त भोगका परमाधिष्ठान है और धर्मका स्वामी है। श्रीव्रजराजका लाल न कृपण है, न असूयु। उदारचक्र-चूडामणि है मोहन और इतना है, इसीलिये वह अपने जनोंके अर्थ, धर्म, कामकी प्राप्तिके प्रयास नष्ट कर देता है। जो देनेमें समर्थ है, नष्ट करनेका उसीको अधिकार है।

आपने बड़ी सावधानीसे, बहुत चतुर सहायकोंको लेकर व्यापार किया। बहुत उपयुक्त समयमें। दूसरे सब आपके सहकर्मी लाभमें और आपको घाटा लगा। यह कृपा हुई आपपर—आपको श्यामने स्वजन माना।

आपने सविधि अनुष्ठान किया। पूरा जप-पुरश्चरण सम्पन्न हुआ। मन्त्र, विधि, श्रद्धामें कहीं कोई त्रुटि नहीं। हवन-तर्पणादि सब सम्पूर्ण; किंतु मन्त्रदेवता करे क्या ? वह अन्ततः सर्वसमर्थसे बलवान् तो नहीं है। सर्वेश्वर जब उसे डाँट दे—'चुप बैठो !' अब आपके अनुष्ठानकी सफलता मन्त्रदेवता दे तो कैसे ?

आपको ज्योतिषियोंने बहुत यश, बहुत भोग-सम्पन्न होना बतलाया था। ज्योतिषशास्त्र झूठा नहीं है; किंतु ज्योतिष आपके प्रारब्धको ही तो बतलायेगा। यह जो 'कर्तुंमकर्तुंमन्यथा-कर्तुं समर्थं' चिर चपल है, इसपर तो कोई अङ्कुश लगानेमें समर्थ नहीं ! यह आपके प्रारब्धको एक ओर पटकता जा रहा है—इसकी कोई दवा किसीके समीप कहाँ है। भक्तका कोई प्रारब्ध नहीं होता। श्रीकृष्णको जिस दिन आपने 'अपना' कहा, प्रारब्ध—कर्मदेवता उसी दिन आपको हाथ जोड़ चुके। अब तो यह नटखट जो करे, जो चाहे—वह विधान आपके लिये।

यह ऐसा क्यों करता है ? कृपा-परवश होकर। स्वजनोंको अपनेसे दूर होते देखकर इससे रहा नहीं जाता। उनको अपनी ओर खींचना इसका स्वभाव है।

परमविरक्त देवर्षि नारद; किंतु—

मोह न अंध कीन्ह केहि केही।
को जग काम नचाव न जेही॥

देवर्षि विवाह करनेको उद्यत हो गये और वह भी विश्वमोहिनीसे ! उन्होंने उस कन्याका हाथ देखा तो उसके लक्षण दीखे—

जहि जो बरै अजय सो होई ।
समर भूमि तेहि जीत न कोई ॥

'अहो मोहमहिमा बलवाना ।' अन्यथा नारदजीको क्या सुर-असुर सबसे युद्ध करके त्रिलोकविजयी होना अभीष्ट था ? वे अजर-अमर तो हैं ही । विश्वमोहिनीमें ऐसा कोई भी तो गुण नहीं था जो उनके लिये दुर्लभ हो या उन्हें अभीष्ट हो । किंतु लीलामयकी लीला ।

देवर्षिने एक श्लाघ्य कर्म इस अवस्थामें भी किया । उन्होंने दूसरा कोई उपाय न अपनाकर भगवान्‌को ही पुकारा । उनका भक्त-स्वरूप है यह । वे और कुछ करते तो भी वह प्रयास सफल नहीं होना था; किंतु तब वह भक्तिका कलङ्क होता ।

मोर दास कहाइ नर आसा ।
करइ तौ कहहु कहा बिस्वासा ॥

'हम दुर्बल हैं—हमारे मनमें धनकी, भोगकी, यशकी स्पृहा है; किंतु लेंगे हम तुम्हींसे । तुम दो या मत दो—हम अन्यसे माँगेंगे नहीं । अन्यत्र जायँगे नहीं । तुम्हें—केवल तुम्हें पुकारेंगे ।'

भक्तका यही स्वभाव—यही स्वरूप है । देवर्षिने किया यही । उनका निश्चय इस मोहग्रस्त अवस्थामें भी अविचल है—

मोरे हित हरि सम नहिं कोऊ ।

भगवान् प्रकट हुए । उन्होंने स्पष्ट कह दिया—

कुपथ माग रुज ब्याकुल रोगी ।
बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ॥

रोगाक्रान्त व्यक्ति कुपथ्य माँगेगा तो चिकित्सक उसे कुपथ्य दे देगा ? अबोध शिशु सर्प, अग्नि या विष उठानेको मचलेगा तो माता उसको वह उठाने देगी ?

तब क्या श्रीकृष्ण किसीको धन-वैभव, सुख-भोग, पद-प्रतिष्ठा देते नहीं हैं ? देते तो हैं, क्यों देते हैं ? क्यों दिया उन्होंने ?

कन्हाई देता है—दिया है इसने और देता है तो अल्प देना इसे आता नहीं । भरपूर देता है । क्यों देता है—यह मत पूछिये । किसे देता है, यह पूछिये ।

किसे देता है ?

जिसे धनमें, धर्ममें, भोगमें कोई रस—कोई रुचि, कोई आसक्ति नहीं है । जो अर्थ, धर्म, कामको पाकर भी उनमें बँधता नहीं । जो इनको श्यामका प्रसाद समझकर ग्रहण करता है । इनके आनेमें जिसे हर्ष और जानेमें जिसे विषाद नहीं होता ।

मिथिलायां दह्यमानायां न मे दह्यति किंचन ।

सारी मिथिलापुरीके जल जानेपर भी मेरा तो कुछ नहीं जल रहा है ।—यह क्षमता जिसमें है—उसे श्याम राज्य देता है ।

चिकित्सक बादाम या पिश्तेका सेवन किसे बतलायेगा ? किसे वह गरिष्ठपाक देगा ? जिसमें उसे पचानेकी क्षमता हो । जिसे ये गुरुपाक वस्तुएँ रोगी न करके शक्ति दे सकें ।

श्यामका स्वभाव अपने स्वजनोंको नित्य संरक्षण देना है । अधिक प्राणी दुर्बल हैं—मानसिक दृष्टिसे रोगी हैं । इसलिये इस व्रजराजकुमारको उन सबके प्रति अधिक सावधान रहना पड़ता है । ये रोगी सदा कुपथ्यकी प्राप्तिका प्रयास करते हैं । कभी इधर हाथ बढ़ाते हैं, कभी उधर । कभी एकसे कुछ माँगते हैं, कभी दूसरेसे । ये देवता-देवी, यज्ञ-अनुष्ठान अथवा लौकिक प्रयास; किंतु कृष्ण असावधान नहीं होता और इसके स्वजनोंको कुपथ्य अर्पित करनेका साहस किसीमें है नहीं । रोगीका कुपथ्य-प्राप्तिका प्रयास तो उत्तम अभिभावक असफल करता ही रहेगा ।

किस कुपथ्यप्रेमी रोगीने अभिभावकको सदय कहा है ? रोगी तो उसे निष्ठुर कहेगा ही । रोगीकी बातें, रोगी-की गालियाँ, रोगीका तिरस्कार—यह सब क्या ध्यान देनेकी बात है ?

ये जगत्‌के मानसिक रोगी । कन्हाईको अपना बनाकर फिर कहते हैं—'बड़ा क्रूर, बड़ा निष्ठुर ।' पता नहीं और क्या-क्या । अनन्त करुणार्णव कृष्णचन्द्र कहाँ सुनता है—कहाँ ध्यान देता है इनकी चेष्टाओं एवं शब्दोंपर । इसे तो अपनोंसे सहज स्नेह है ।

श्यामका स्वभाव—अपने जनोंके स्खलनमें सदा उनकी

रक्षा करते रहना। अतः यह अपनोंके त्रिवर्ग-प्राप्तिके प्रयासको विफल करनेका स्वभाव बनाये बैठा है। इसका यह स्वभाव—इससे महान् कोई अभयका आश्वासन पुरुषके लिये हो सकता है ?

धर्मप्राण स्वामी विवेकानन्द

(लेखक—पं० श्रीशिवनाथजी दुबे)

प्रख्यात पाश्चात्त्य तत्त्ववेत्ता हर्बर्ट स्पेन्सर चकित हो गया। दाँतों-तले अंगुली दबा ली उसने। तत्त्वज्ञानविषयक टीका-टिप्पणी तो दूरकी बात है, सामान्य लेख लिखना भी कठिन होता है। यह कार्य भारतके एक अल्पवयस्क छात्रने किया है, यह देखकर स्पेन्सर साहब अत्यन्त आश्चर्यमें पड़ गये और उन्होंने सोत्साह लिखा—'आप निरन्तर उद्योग करते रहें, भविष्यमें संसार आपसे उपकृत होगा।…' वास्तवमें हर्बर्ट स्पेन्सरकी वाणी अक्षरशः सत्य सिद्ध हुई। उस बालकने आगे चलकर विश्वको वह स्निग्ध ज्योति प्रदान की, जिससे जगत् दीर्घकालतक भ्रम-तमसे मुक्त होकर सुख-शान्ति-निकेतन परमतत्त्वका संस्पर्श पानेमें समर्थ हो सकेगा।

उस परम पुण्यवान् बालकने कलकत्तेके समीप 'सिमूलिया' नामक गाँवमें एक सम्भ्रान्त कायस्थ-कुलमें १२ जनवरी सन् १८६३ ई० को जन्म लिया था। उसके पिताका नाम बाबू विश्वनाथ दत्त था। बाबू विश्वनाथ दत्तजी विद्वान्, बुद्धिमान्, धर्मप्रेमी एवं सदाचारसम्पन्न पुरुष थे।

अपनी असाधारण योग्यता एवं उद्योगसे जब आप कलकत्तेके हाईकोर्टमें अटर्नी हुए, उस समय आपके वृद्ध एवं धार्मिक पिताने संन्यास-ग्रहण कर लिया था। संन्यस्त-वृत्तिका वही शुभ संस्कार नरेन्द्रपर जीवनके प्रारम्भिक काल-से ही परिलक्षित हो रहा था।

विश्वनाथजीने अपने बच्चेका नाम वीरेश्वर रक्खा, किंतु लाड-प्यारके कारण उसे नरेन्द्र कहने लगे। कुछ दिनों बाद वह बालक नरेन्द्रनाथके नामसे पुकारा जाने लगा। यही अद्भुत प्रतिभासम्पन्न बालक नरेन्द्रनाथ आगे चलकर स्वामी विवेकानन्दके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

गौर-वर्ण, सुन्दर नेत्र, सुडौल एवं तेजपूर्ण आकृति अत्यन्त मोहक थी नरेन्द्रकी। उसे जो एक बार देख लेता, देखता ही रह जाता। प्रकृतिने अद्भुत आकर्षणमय बना दिया था उसे।

शैशवमें नरेन्द्र अत्यन्त चञ्चल थे। वे खेलाड़ी एवं विनोदप्रिय भी थे। जिस बच्चेसे बात करते, वह हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाता और सदा उनके साथ ही रहना चाहता, पर नरेन्द्रकी चञ्चलताके कारण उनकी शिकायतें भी काफी होतीं। कभी-कभी किसी लड़केको पेटभर हँसा दिया तो किसीको थप्पड़ भी जमा दिया। अध्यापकने कोई चर्चा छेड़ी नहीं कि आप विवादमें उतर आते। परिणामतः कोई दिन ऐसा नहीं जाता कि उनके माता-पिता एवं शिक्षकके पास दो-चार शिकायतें न पहुँचती हों।

यद्यपि नरेन्द्रकी शिकायतें सुन-सुनकर माता-पिता और शिक्षक घबराते, पर उनका स्नेह कभी कम नहीं हो सका। नरेन्द्र माता-पिताकी सेवा प्राणपणसे करते, बात-बातमें उन्हें हँसा दिया करते और पाठशालामें वे सम्पूर्ण विद्यार्थियों-से योग्य सिद्ध होते थे। उनकी बुद्धि अत्यन्त प्रखर एवं विलक्षण थी। वे अपनी कक्षाके विद्यार्थियोंको स्वयं पढ़ा दिया करते और छात्रोंके अध्ययनमें प्रत्येक रीतिसे सहयोग करते रहते, इस कारण छात्रों एवं शिक्षकोंका आकर्षण स्वाभाविक ही इनकी ओर बढ़ता जाता। अपनी चौदहवीं वर्षगाँठ पूरी करते-करते तो आपने मैट्रिक्यूलेशन और अष्टादश वर्षकी आयुमें बी० ए०की परीक्षाएँ उत्तीर्ण कर लीं। इन्हें तत्त्वज्ञानसम्बन्धी पुस्तकोंके अध्ययनमें बड़ा आनन्द मिलता और रसकी अनुभूति होती। शिक्षाकालमें ही आपने हर्बर्ट स्पेन्सर महोदयके अवलोकनार्थ तत्त्वज्ञान-सम्बन्धी टीकात्मक लेख भेजा था, जिसके उत्तरमें उन्होंने उपर्युक्त उत्तर उन्हें लिखा था।

नरेन्द्रकी संस्कृत और अंग्रेजीकी शिक्षा समाप्त होते-होते उनके पूज्य पिताका देहावसान हो गया। इस कारण परिवार-पालनका दायित्व आपहीपर आ पड़ा और विवशतः आपको साठ रुपये मासिकपर नौकरी करनी पड़ी। किंतु

नौकरीके कार्यमें इनका मन बिल्कुल नहीं लगता था। अपने अत्यन्त रुचिकर एवं प्रिय विषय तत्त्वज्ञानके अध्ययनके लिये अवकाश नहीं मिलनेसे वे आकुल हो उठते थे। ये अत्यन्त मातृभक्त थे। माताको प्रत्येक रीतिसे सुखी एवं संतुष्ट रखनेके लिये आप सतत सचेष्ट रहते थे। ममतामयी माँ पुत्रवधूका मुख देखनेके लिये उत्सुक थीं, पर श्रीस्वामीजीका मन वैवाहिक-बन्धनसे घबराता था। वे इससे दूर रहकर ही मानव-जीवनके परम एवं चरम उद्देश्यकी सिद्धि कर सकते थे। वे ब्रह्मचर्यका मूल्य समझते थे और इसी कारण इसके प्रबल पक्षपाती थे। फलतः माताकी यह लालसा पूर्ण नहीं हो सकी। इन्होंने लन्दनसे लिखे अपने एक पत्रमें लिखा था—'मुझे ऐसे मनुष्योंकी आवश्यकता है, जिनकी नसें लोहेकी, ज्ञानतन्तु फौलादके और अन्तःकरण वज्रके हों। क्षत्रियोंका वीर्य और ब्राह्मणोंका तेज जिनमें एकत्र हुआ हो, ऐसे बाल-नरसिंह मुझे अपेक्षित हैं। ऐसे लाखों बालक मेरी आँखोंके सामने हैं। मेरी आशाओंको पूर्ण करनेके अङ्कुर उनमें स्पष्टतया दीख पड़ते हैं, परंतु हा, उन सुन्दर बच्चोंका बलिदान होगा। होम-कुण्डमें उनकी पूर्णाहुति दी जायगी। विवाह! विवाहके होम-कुण्डकी प्रखरतासे प्रज्वलित अग्निकी ज्वालाएँ देखो चारों ओर जल रही हैं। इसी कुण्डमें मेरे बालकोंको झोंक दिया जायगा।......'श्रीस्वामीजी अपने इस दृढ़ निश्चयके अनुसार तत्त्व-चिन्तनमें लग गये।

उस समय ब्राह्मसमाजका अत्यधिक प्रचार था। श्रीस्वामीजीकी प्रत्येक धर्मका मूल-तत्त्व जाननेकी इच्छा थी, इसलिये वे सर्वप्रथम ब्राह्मसमाजमें प्रविष्ट हुए। इन्होंने अनुभव किया कि यहाँ कोरे उपदेशके अतिरिक्त और कुछ नहीं है। इनके प्रबल तर्कोंका उत्तर एवं समाधानमें असमर्थ ब्राह्मसमाजी इन्हें नास्तिकतक कह डालते, पर जिसे ज्ञानके मूलाधारमें प्रवेश करना होता है, उसे किसीकी चिन्ताके लिये अवकाश कहाँ? वह तो ज्ञान-प्राप्तिके लिये अनुदिन सजग और यत्नशील रहता है। ब्राह्मसमाजसे निराश होकर श्रीस्वामीजीने इस्लाम एवं ईसाई-धर्मका मनन प्रारम्भ किया, किंतु वहाँ भी उन्हें कुछ हाथ नहीं आया। सनातन धर्मकी प्राचीन परिपाटी उन्हें प्रिय नहीं थी, किंतु ज्ञानार्जनकी दृष्टिसे इन्होंने वेद-शास्त्रोंका गहन अध्ययन प्रारम्भ किया। सनातन वैदिक धर्मके गूढ़ एवं परमोपयोगी सिद्धान्तोंने इनके मनको मुग्ध कर लिया। अब इन्हें कुछ शान्ति मिली। धीरे-धीरे इनका विश्वास दृढ़ होता गया कि मनुष्य-जातिका कल्याण करनेकी अद्भुत क्षमता इस धर्ममें विद्यमान है।

भवाटवीसे त्राण पानेके लिये अपेक्षा होती है ज्ञानसम्पन्न सद्गुरुकी। नरेन्द्र अर्थात् श्रीस्वामीजी महाराज सद्गुरुकी खोजमें लगे थे, पर वे जहाँ जाते, जिनके पास जाते, उन्हें निराशा ही मिलती। वाग्जालके अतिरिक्त उन्हें कहीं कोई साधनसम्पन्न पुरुषके दर्शन नहीं हुए। गुरुदर्शनकी तीव्रतम लालसासे वे आकुल हो रहे थे, उसी समय भगवती भागीरथीके पुनीत तटपर दक्षिणेश्वरमें परमहंस स्वामी रामकृष्ण निवास करते थे। अपने एक मित्रके आग्रहसे श्रीस्वामीजी परमहंसजीके पास गये। परमहंसजीमें अद्भुत तप, विलक्षण वैराग्य एवं अटूट देवीभक्ति थी। नरेन्द्रपर उनका गम्भीर प्रभाव पड़ा। प्रथम दिन ही नरेन्द्रको अकल्पित समाधि लग गयी। उन्हें दिव्य-दृष्टि प्राप्त हुई। अब तो वे रामकृष्ण परमहंसके शिष्य हो गये। बहुत दिनों बाद उनका अभीष्ट सिद्ध हुआ, सद्गुरुकी प्राप्ति हुई। उनकी सम्पूर्ण विचार-धारा परिवर्तित हो गयी।

नरेन्द्रमें गुरुके प्रति श्रद्धा एवं भक्ति अटूट थी। कभी-कभी वे गुरुदेवकी स्मृतिसे बालककी भाँति फूट-फूटकर रोने लगते थे। बड़ी-से-बड़ी सभामें वे स्पष्ट कहते थे—'गुरुदेव मेरे हैं और मैं उनका हूँ। वे मेरे माता-पिता, बन्धु, प्राण, आत्मा, त्राता क्या सर्वस्व वे ही मेरे हैं। मुझमें यदि कहीं कोई शुभ है तो वह है मेरे तपोमय मञ्जुल-मूर्ति गुरुदेवका ही। मैं तो अशुभ-अवगुणकी राशिमात्र हूँ।'

१६ अगस्त सन् १८८६ ई० को परमहंस रामकृष्णजी परम धाम पधारे। नरेन्द्र आकुल हो गये। उन्होंने अपनी मातासे संन्यास-ग्रहणकी आज्ञा बड़ी कठिनाईसे प्राप्त की और संन्यास धारणकर वैदिक-धर्मका विश्वमें प्रचार करनेका निश्चय किया तथा अब वे 'नरेन्द्र'के स्थानपर श्रीस्वामी विवेकानन्दके नामसे प्रसिद्ध हुए।

श्रीस्वामीजीने योगका भरपूर अभ्यास किया था, इसके लिये वे कभी-कभी एकान्तवास भी करते थे। उनके लिखे पत्रोंसे विदित होता है कि विदेशोंमें भी वे बीच-बीचमें एकान्तमें रहकर अपना अभ्यास करते रहते। संन्यासकी दीक्षा लेनेके बाद तो वे कुछ दिनोंतक हिमगिरिकी गम्भीर गुहामें भी रहे थे और बौद्धधर्मका रहस्य समझने एवं

वहाँपर अद्वैत-मतके प्रचारार्थ वे तिब्बत, चीन और जापान भी गये थे। वहाँसे लौटनेपर आप काशी, प्रयाग, बेलगाँव और धारवाड़ आदि होते हुए पुण्यभूमि रामेश्वर पहुँचे। वहाँसे उन्होंने हिंदू-दर्शनका अमृतमय तत्त्व भारतसे सहस्रों मील दूर, महासागरके पार विदेशियोंमें वितरित करनेका निश्चय किया।

शुभ-संकल्पमें परमात्माकी सदा सहायता मिलती है। संयोगवश श्रीस्वामीजीकी रामनाथके महाराजसे भेंट हो गयी। उन्होंने स्वामीजीको साधारण साधु समझकर सविनोद हिंदीमें वेदान्त-सम्बन्धी प्रश्न किया। स्वामीजीने उनके प्रश्नका विस्तृत उत्तर अंग्रेजीमें इस प्रकार दिया कि रामनाथके महाराज मुग्ध तो हो ही गये, चमत्कृत भी हुए। उन्होंने स्वामीजीसे अमेरिकाकी सर्वधर्म-परिषद्में हिंदू-धर्मके प्रतिनिधिके रूपमें जानेका अनुरोध किया। स्वामीजीका पहलेसे विचार था ही, वे प्रस्तुत हो गये।

मद्रास आदि नगरोंमें उन्होंने अमेरिका जानेका अपना उद्देश्य प्रकट किया। लोगोंने चंदाके द्वारा कुछ रुपये एकत्र किये, पर वे रुपये इतने कम थे कि अमेरिका जाते-जाते ही समाप्त हो गये। विदेशमें जहाँ कोई परिचय नहीं, व्ययके लिये पासमें पैसे नहीं, ऐसी स्थितिमें किसी व्यक्तिकी क्या दशा हो सकती है, अत्यन्त सरलतासे सोचा जा सकता है, किंतु जो उस निखिल सृष्टिनायकपर पूर्णतया निर्भर है, जिसके भ्रू-संचालनमात्रसे अनन्त ब्रह्माण्डोंका सृजन एवं विनाश हुआ करता है एवं जो अणु-अणुमें व्याप्त है, उसके आश्रितको कब और क्यों चिन्ता होने लगी ? स्वामीजी अपने लिये सर्वथा निश्चिन्त थे।

उनका वेष अत्यन्त सरल, भव्य एवं आकर्षक था। उन्होंने दण्ड-कमण्डलु नहीं धारण किया। पैरोंमें भारतीय जूता, सिरपर गेरुआ साफा, शरीरपर गेरुई कफनी और कटिमें कौपीन—बस, और कुछ अपेक्षा नहीं। यह वेष भारतवर्षमें सूती एवं विदेशोंमें शीतसे रक्षाके लिये ऊनी कपड़ोंका होता।

अमेरिकामें पहुँचते ही इन्हें एक वृद्धा स्त्रीने देखा तो उसे बड़ा कौतूहल हुआ। वह पूर्वके इस विचित्र वेषधारी जीवको मनोरञ्जनार्थ अपने घर ले गयी, किंतु जब उसके परिवारवालोंने श्रीस्वामीजीकी तत्त्व-ज्ञानकी बातें सुनीं तो अपना अहोभाग्य समझने लगे। वहाँ धीरे-धीरे स्वामीजीके अमृतमय उपदेशका पान करनेके लिये सहस्रों नर-नारी एकत्र होने लगे। कितने ही प्रतिष्ठित पत्रोंके सम्पादक, ग्रन्थकार और अध्ययनशील विद्वान् स्वामीजीका उपदेश सुनकर झूम उठे और परिणामतः थोड़े ही दिनोंमें समाचारपत्रोंके द्वारा स्वामीजीकी कीर्ति दूर-दूरतक फैल गयी।

स्वामीजीकी वक्तृत्व-कला विलक्षण थी। उनकी वाणी मधुर, सरल एवं मनोमुग्धकारिणी थी। वे अंग्रेजी इतनी अच्छी बोलते थे कि विदेशी उनकी ओर देखते ही रह जाते थे। निगूढ़ तत्त्वको भी अत्यन्त सरल भाषामें सोदाहरण समझानेकी अपूर्व क्षमता स्वामीजी महाराजमें विद्यमान थी। अमेरिकाके कुछ ईर्ष्यालु विद्वानोंने स्वामीजीको पराजित करनेके उद्देश्यसे अपने देशके प्रसिद्ध तत्त्वज्ञानीसे मिलनेके लिये स्वामीजीसे प्रार्थना की, किंतु स्वामीजीकी तेजस्विता, उनकी वाणी और उपदेशपर वह मुग्ध हो गया और उसी समय उनका शिष्य बन गया। उसी समय उस अमेरिकन विद्वान्ने सर्वधर्म-परिषद्—जो शिकागो नगरमें थी—के सभापति डा० बेरोज महोदयसे स्वामीजीको मिलाया। डा० बेरोज महोदय भी स्वामीजीसे मिलकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने स्वामीजीका नाम सर्वधर्म-परिषद्में भारतीय प्रतिनिधिके रूपमें लिख लिया। इतना ही नहीं, स्वागत-समितिने सब धर्मोंके प्रतिनिधियोंका अभिनन्दन करनेके लिये आपहीको चुना। स्वामीजीने सर्वधर्म-प्रतिनिधियोंका स्वागत जिस विद्वत्ता, विनय, शील तथा स्नेहपूर्ण व्यवहारसे किया, वह विदेशियोंके मनपर छाप छोड़ गया। सर्वधर्म-परिषद्में सबकी आँखोंमें स्वामी विवेकानन्द ही दीख रहे थे।

जिस दिन स्वामीजीका व्याख्यान होनेवाला था, उस दिनके लिये अमेरिकाके पत्रों और नगरके चारों ओर भारतके अद्भुत विद्वान् संन्यासीके दर्शन एवं भाषण सुननेके लिये पोस्टर चिपकाये गये थे। उस दिन सभामें तिल रखनेके लिये स्थान नहीं बचा था। सभाके बाहर लाखों व्यक्ति स्वामीजीके दर्शनार्थ तृषित नेत्रोंसे प्रतीक्षा करते हुए खड़े थे।

'संसारमें एक धर्म होना सम्भव है या नहीं ? यदि सम्भव है तो वह धर्म कौन-सा है ?'—यह विषय था उस दिन। स्वामीजीने अनेक युक्तियों एवं प्रमाणोंके द्वारा हिंदू-धर्ममें उन समस्त अनुपम गुणोंका समावेश बताया जो

सर्वधर्म-प्राण हैं। उन्होंने किसी धर्मपर किंचित् भी आँच पहुँचाये बिना वहाँ सिद्ध कर दिया कि विश्वमें एकमात्र हिंदू-धर्म ही ऐसा है, जिसे सब लोग स्वीकार कर सकते हैं। इसके बाद तो अमेरिकामें स्वामीजीकी कीर्ति सर्वत्र फैल गयी। अमेरिकी जनता स्वामीजीकी चरण-रज प्राप्त करनेके लिये लालायित हो उठी। इस प्रकार सहस्रों स्त्री-पुरुष उनके शिष्य हो गये और धनका ढेर स्वामीजीके चरणोंपर लग गया। 'न्यूयार्क क्रीटिक' तथा 'न्यूयार्क हेरल्ड'–जैसे प्रख्यात अमेरिकी पत्रोंने स्वामीजीकी प्रशस्ति इस प्रकार लिखी—'जिसने गेरुए वस्त्र धारण किये थे, जिसकी आकृतिसे बुद्धिमत्ता झरती थी और जिसकी वाणीमें स्खलन नहीं था, वह हिंदू-धर्मोपदेशक जगदीश्वरका उत्पन्न किया हुआ है, जन्मसिद्ध वक्ता है।'

अब तो स्वामीजीका उपदेश सुननेके लिये दूर-दूरसे सानुरोध आमन्त्रण आने लगे। सबकी सुविधाके लिये श्रीस्वामीजीने न्यूयार्कमें रामकृष्ण मठकी स्थापना की और वहाँ ध्यान, धारणा तथा प्राणायामकी शिक्षा प्रारम्भ की।

स्वामीजीकी यश-सुरभि ब्रिटेन पहुँच चुकी थी। ब्रिटेनवासियोंके आग्रहपर आप वहाँ पधारे। वहाँ आपका भव्य स्वागत हुआ तथा आपके सदुपदेशसे ब्रिटेननिवासी लाभान्वित एवं प्रभावित हुए। वहाँ भी कितने ही स्त्री-पुरुष स्वामीजीके शिष्य हो गये।

इसके बाद स्वामीजी सीलोनवासियोंके आग्रहपर अमेरिका और इंग्लैंडके अपने कितने ही शिष्योंके साथ कोलम्बो पहुँचे। आपके स्वागतार्थ कोलम्बोमें अत्यधिक जनता एकत्र थी। वहाँसे आप सीधे कलकत्ता आनेवाले थे, किंतु स्नेहमूर्त्ति स्वामीजी सीलोनवासियोंका स्नेहाग्रह नहीं टाल सके।

सीलोनके कुछ नगरोंमें अपने उपदेशामृतसे लोगोंको आप्यायित कर आप रामेश्वर पधारे। अबतक भारतवासी इस महापुरुषको समझ चुके थे। अतः स्वामीजी महाराजका अद्भुत स्वागत हुआ। रामनाथके महाराज तो आनन्द-विभोर हो गये थे। ध्वज, तोरण, वाद्य, हाथी-घोड़े और ऊँटोंकी पंक्तियाँ लगी थीं। श्रीस्वामीजीको रथमें बिठाकर उनका रथ सम्भ्रान्त भारतीय खींच रहे थे।

इसके अनन्तर स्वामीजीने सम्पूर्ण भारतका भ्रमण किया और अपने आध्यात्मिक उपदेशोंसे प्रसुप्त भारतीयोंको जगाया तथा उन्हें नवजीवन-दान दिया। आपने कई स्थानोंपर मठ स्थापित किये तथा भवाब्धिसे पार जानेके लिये अपने शिष्यों तथा श्रोताओंको जन-सेवा एवं भगवत्प्राप्तिके मार्गपर दृढ़तासे चलनेके लिये उपदेश देते रहे। सन् १८९७ ई० के दुष्कालमें स्वामीजी महाराजने मिशनके द्वारा जनताकी पर्याप्त सेवा की! भ्रमण एवं पर्याप्त श्रमके कारण स्वामीजीका स्वास्थ्य शिथिल रहने लगा। मित्रों एवं चिकित्सकोंके परामर्शसे स्वामीजी स्वास्थ्य-सुधारकी दृष्टिसे २२ जून सन् १८९९ ई० को मद्राससे होते हुए केलिफोर्निया पहुँचे। आपके स्वास्थ्यमें कुछ अनुकूल परिवर्तन हुआ; किंतु इसी बीच पेरिसकी सर्वधर्म-परिषद्में वेदान्तपर प्रवचन करनेके लिये आपको निमन्त्रण-पत्र प्राप्त हुआ। आपने शीघ्र ही फ्रेंच भाषाका अभ्यास कर लिया और सन् १९०० ई० में पेरिस पहुँचे। स्वामीजीके अद्भुत व्याख्यानसे प्रभावित होकर वहाँ भी कितने ही फ्रांसीसियोंने आपका शिष्यत्व ग्रहण किया।

स्वामीजीका मन अपने भारतमें था, उन्हें प्रतिक्षण भारतकी चिन्ता लगी रहती थी, इसलिये वे यथाशीघ्र भारत लौट आये। स्वदेशमें आपने घूम-घूमकर धर्म-प्रचार किया। काशीमें 'राम-कृष्ण सेवाश्रम' तथा अन्य कितने ही स्थानोंपर 'राम-कृष्ण पाठशाला', 'राम-कृष्ण होम आफ सर्विस' आदि उपयोगी संस्थाओंकी स्थापना की। ये संस्थाएँ आज भी देशकी बहुमूल्य सेवा कर रही हैं।

स्वामी विवेकानन्दजी अद्भुत संत थे। प्रेमकी मञ्जुल मूर्ति थे। उनकी वाणीपर जैसे सरस्वतीका निवास था। वे अत्यन्त सरल तथा शिष्ट थे। जगत्के समस्त प्राणी कराल कालके गालमें प्रवेश करनेके पूर्व ही जीवनके मुख्य लक्ष्यकी सिद्धि कर लें, यह उनका उद्देश्य था। इसे वे अत्यन्त मधुर एवं प्रिय वाणीमें तत्काल समझा देनेमें समर्थ थे। कठोर-से-कठोर विरोधीको भी आप अपनी सरलता तथा स्नेहसे अपना बना लेते थे।

एक बारकी बात है। जब स्वामीजी सर्वप्रथम अमेरिका गये थे। सड़कपर चल रहे थे। एक अमेरिकनने समझा यह कोई चीनी प्रेत होगा। उसने अपनी छड़ीसे स्वामीजीके सिरका साफा उठाकर दूर डाल दिया। स्वामीजीने उसे देखा और अत्यन्त सरलतासे अंग्रेजीमें कहा 'आपको मेरा हैट (साफा) फेंकनेका कष्ट क्यों उठाना पड़ा ?' स्वामीजीके अत्यन्त शिष्ट एवं मिष्ट वाणीसे अवसन्न होकर उसने उत्तर दिया 'आपने ऐसा विचित्र वेश किसलिये धारण कर रक्खा है ?'

स्वामीजीने बड़ी विनम्रतासे कहा—'मैं बहुत दिनोंसे सुनता था कि यह देश बड़ा सभ्य है, इसलिये मैं इसके दर्शनार्थ आया था। संतोषकी बात है कि सभ्यताका प्रथम पाठ आपहीने मुझे पढ़ाया।'

अमेरिकनकी लज्जाकी सीमा न रही। स्वामीजीसे क्षमा-याचना करनेके अतिरिक्त उसे कोई मार्ग नहीं था।

स्वामीजी अत्यन्त उद्योगी एवं परिश्रमी पुरुष थे। वे निरन्तर कार्यरत रहते। देशकी सर्वाङ्गीण उन्नतिके लिये वे उद्योगको मुख्य साधन समझते थे। एक सज्जनके मुक्ति-सम्बन्धी प्रश्नके उत्तरमें आपने कहा था 'मुक्तिके लिये उद्योगकी आवश्यकता है।' फिर हँसते हुए स्वामीजी बोले—'यदि तुम कुछ नहीं करते तो चोरी-लबारी ही सीख लो। निठल्ले बैठे रहनेसे तो चोरी-लबारी-जैसा उद्योग भी अच्छा है। मनुष्य उद्योग करता रहे तो ज्ञान होनेपर वह आप-ही-आप बुरे कर्मोंको छोड़कर अच्छा काम करने लगेगा। निरुद्योगी व्यक्ति तो किसी मर्जकी दवा नहीं।'

इसीलिये स्वामीजीने बल देकर कहा था 'तुम प्रतिज्ञा कर लो कि मरणपर्यन्त कार्य करते रहोगे। देहत्याग करनेपर भी संसारकी भलाईके लिये उद्योग करोगे। सत्य और सद्गुणोंके आगे विघ्न-बाधाओंकी दाल नहीं गलेगी।'

वे कहते थे 'धर्मका रहस्य उसके अनुसार आचरणमें निहित है, कोटि-कोटि बातें बनानेमें नहीं। सच्चा बनकर सद्व्यवहार करनेमें ही समस्त धर्मोंका सार है। केवल प्रभो! प्रभो! कहकर पुकारनेवाले नहीं, वरं परम पिता परमेश्वरके आज्ञानुसार काम करनेवाले ही सच्चे धार्मिक होते हैं।

'अपना भला चाहनेवालोंके लिये दूसरोंके साथ भलाई करनेके सिवा दूसरा कोई उपाय नहीं।'

स्वामीजी अनन्य गुरुभक्त थे और थे सच्चे परमार्थ-पथके पथिक। धन-सम्पत्ति दरिद्रों, अनाथों और असहायोंमें वितरित करते रहनेकी उनकी इच्छा रहती थी। उन्हें जो मिलता गरीबोंकी सहायतामें लगा देते थे। उन्होंने बलपूर्वक कहा है—

'इस बातको आप कभी न भूलें कि आपका जन्म देनेके लिये है—लेनेके लिये नहीं, इसलिये आपको जो कुछ देना हो, वह बिना एतराज किये—बदलेकी इच्छा न रखकर दे दीजिये, नहीं तो दुःख भोगने पड़ेंगे। प्रकृतिके नियम इतने कड़े होते हैं कि आप खुशीसे नहीं देंगे तो वह जबर्दस्ती आपसे छीन लेगी। आप अपने सर्वस्वको चाहे जितने दिनोंतक छातीसे लगाये रहें, एक दिन प्रकृति उसे आपकी छातीपर सवार हो लिये बिना न छोड़ेगी। प्रकृति बेईमान नहीं है। आपके दानका बदला वह अवश्य चुका देगी, परंतु पानेकी इच्छा करोगे तो दुःखके सिवा और कुछ हाथ न लगेगा। इससे तो राजी-खुशी दे देना ही अच्छा है।'

स्वामीजी परदोष-दर्शनको जीवनकी बड़ी बुराई समझते थे और इससे बचनेके लिये लोगोंको बार-बार सावधान करते रहते थे। वे चाहते थे कि देखना ही है तो अपने दोष देखो और दूसरोंमें देखना ही है तो गुण देखो। वे बार-बार कहते थे—'दूसरोंके दोष देखनेमें आप जितना समय लगाते हैं, उतना अपने दोष सुधारनेमें लगाइये, आप अपना चरित्र सुधारेंगे, अपना आचरण पवित्र बनायेंगे तो संसार आप ही सुधर जायगा।'

स्वामीजीका सम्पूर्ण जीवन ही त्याग, तप, साधन, धर्मोपदेश एवं विश्व-कल्याणमें व्यतीत हुआ, जिसका विस्तृत वर्णन इस लघु लेखमें सम्भव नहीं। स्वामीजी निरन्तर श्रमसे थक गये थे। ४ जुलाई सन् १९०२ ई० की बात है। श्रीस्वामीजी अपने शिष्योंसे कह रहे थे—'आज श्रीगुरु-चरणोंके दर्शनकी इच्छा है। अब आप इसे सानन्द विदा दें। आजतक इससे जो भी कार्य हो सके हैं, वह सद्गुरुके चरणोंका ही फल है। शरीर नश्वर एवं आत्मा अमर है। उसका कार्य कभी नहीं रुकता। देशकी इच्छाओंको आपलोग पूर्ण करें, भगवान् आपकी सहायता करेंगे। 'ओऽम् तत्सत्।'

श्रीस्वामीजीके समीप बैठे लोग उपदेश सुन रहे थे। वे समझ भी नहीं रहे थे कि स्वामीजी क्या कहना चाहते हैं कि 'ॐ तत्सत्' की मङ्गल ध्वनिके साथ ही स्वामीजीका प्राण सच्चिदानन्दघनमें विलीन हो गया। भारतधराको धन्य करनेवाली उनकी अमृतमयी वाणी, उनका पवित्रतम जीवन-चरित्र अब भी हमारे सामने है। हम उसका अनुसरण कर निश्चय ही अपना तथा अपने देशका कल्याण-साधन कर सकते हैं।

भगवान् श्रीराम-कृष्णके तथा रामायण-गीताके अंग्रेज भक्त मेजर श्रीलीद

(लेखक—भक्त श्रीरामशरणदासजी)

गत सन् १९६५ की फरवरीकी बात है। भारतके सुप्रसिद्ध आर्यसमाजी संन्यासी स्वामी श्रीसत्यानन्दतीर्थजी पिलखुवा हमारे स्थानपर पधारे थे। माननीय स्वामीजी महाराजकी यहाँके ला० गंगाशरण नवादेवालोंके स्थानपर गीता-रामायणकी कथा हुआ करती थी। हमें यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि आप एक आर्यसमाजी संन्यासी होकर भी गीता-रामायणकी कथा क्यों कहते हैं ? क्यों गीता-रामायणका बड़े प्रेमसे पाठ करते हैं और क्यों दूसरे लोगोंको भी गीता-रामायणका पाठ करनेका उपदेश करते हैं ?

हमने स्वामीजी महाराजसे इस सम्बन्धमें कई बातें पूछीं और उन्होंने उनका उत्तर दिया। उसी प्रश्नोत्तरका सार हम नीचे दे रहे हैं—

प्रश्न—स्वामीजी महाराज ! एक आर्यसमाजी संन्यासी होते हुए भी आपकी गीता-रामायणमें ऐसी दृढ़ निष्ठा और भगवान् श्रीराम-कृष्णमें ऐसा अद्भुत प्रेम होनेका कारण क्या है ?

स्वामीजी—मेरे जीवनमें एक ऐसी सत्य घटना घटी है कि जिसके कारण मुझे बरबस भगवान् श्रीरामको और भगवान् श्रीकृष्णको परब्रह्म परमात्मा माननेके लिये बाध्य होना पड़ा है और मुझे रामायण और गीतामें इतनी निष्ठा हो गयी है। ··· अच्छा तो लो भक्त रामशरणदास ! सुनो, मेरी अपनी आँखों देखी बिलकुल सत्य घटना मैं तुम्हें सुनाता हूँ। इसे जरा ध्यानसे सुनना।

मैंने इंग्लैंडमें श्रीकृष्णभक्त अंग्रेज मेजर मि० लीदको श्रीकृष्ण-भक्ति करते देखा

मुझे एक बार एक बड़े धनी-मानी सेठके साथ विदेश-यात्राके लिये जाना पड़ा। मैं उस समय जहाँ फ्रांस आदि यूरोपके कई देशोंमें गया, वहाँ कुछ समयके लिये इंग्लैंड भी गया और वहाँ बहुत दिनोंतक रहा। मुझे स्वप्नमें भी यह कल्पनातक नहीं थी कि इस फैशनपरस्त विलासप्रधान देशमें, जहाँ लोग अंडे, मांस, मछली खाते हैं, शराब पीते हैं, स्त्री-पुरुष नग्न होकर नाच (डांस) करते हैं, वहाँ लंकामें भक्त विभीषणकी भाँति कोई सज्जन एकान्तमें बैठकर भगवान् श्रीराम-कृष्णकी भक्ति भी कर रहे हैं !

सहसा एक दिन मुझे एक अंग्रेज सज्जन मिले, जिनका शुभ नाम था—मेजर मि० लीद। मेजर मि० लीद पहले बहुत समयतक भारतमें फौजमें मेजरके पदपर रह चुके थे। वे मेजर मि० लीद भारतीय हिंदू-सभ्यता-संस्कृतिसे बड़े प्रभावित थे तथा बहुत प्रेम रखते थे। वे भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्णके अनन्य भक्त थे। वे इंग्लैंडमें अपनी चक्कीका काम करते थे।

मि० लीदने मुझे भारतीय हिंदू समझकर मुझसे बड़ा प्रेम किया और वे मुझे तुरंत अपने घर ले गये। वहाँ भारतीय अतिथिके नाते मेरा बड़ा आदर-सत्कार किया। जिस प्रकार और बहुत-से अंग्रेज हम भारतीय हिंदुओंको गुलाम देशका और काला आदमी समझकर घृणा करते हैं, वहाँ मि० लीदने मुझे भारतीय ऋषियोंके देशका हिंदू समझकर बड़े प्रेमसे और पूज्यभावसे देखा। उन्होंने बड़े आदरसे मुझे अपने घरमें ठहराया।

वे मुझे एक बार अपने घरके अंदर ले गये। बड़े प्रेमसे एक सुन्दर आलमारी दिखायी, जो संस्कृतके और हिंदीके बहुत-से ग्रन्थोंसे भरी थी। श्रीतुलसीकृत रामायण और श्रीमद्भागवत, श्रीमद्भगवद्गीता, सम्पूर्ण महाभारत आदि सब ग्रन्थ उस आलमारीमें सुशोभित थे। उन सब ग्रन्थोंकी बहुत सुन्दर सुनहरी जिल्दें बँधी हुई थीं। उन्होंने हमारे उन पूज्य धर्मग्रन्थोंको ऐसे सुन्दर ढंगसे आदरपूर्वक सजाकर रक्खा था कि उस प्रकार हम भारतीय हिंदू-घरोंमें भी उन्हें नहीं रक्खा जाता है। वे उन ग्रन्थोंको बड़ी पूज्य दृष्टिसे देखते थे। वे बड़े ही प्रेमसे, बड़ी श्रद्धा-भक्तिके साथ पढ़ते और उनका नित्य प्रति स्वाध्याय करते थे, जिसे देखकर बड़ा आश्चर्य होता था।

श्रीतुलसीकृत रामायण और श्रीमद्भगवद्गीताके तो वे ऐसे अनन्य भक्त और प्रेमी थे कि नित्य उनका पाठ करते-करते श्रीतुलसीकृत रामायणकी बहुत-सी चौपाइयाँ और श्रीमद्भगवद्गीताके श्लोक उन्हें कण्ठस्थ हो गये थे, जिन्हें वे बड़े प्रेमसे गा-गाकर सुनाया करते थे और जिस समय वे गा-गा करके सुनाते, उस समय वे भगवान् श्रीराम-कृष्णके प्रेममें विभोर—गद्गद हो जाते थे।

मेरे द्वारा मि० लीदसे यह प्रश्न किया जानेपर कि 'साहब, आपने एक अंग्रेज होनेपर भी इस प्रकार हिंदी और संस्कृत भाषाका इतना ज्ञान प्राप्त कैसे

किया कि जो इस प्रकार आप रामायणकी चौपाइयाँ और श्रीमद्भगवद्गीताके श्लोक धड़ाधड़ बोल रहे हैं ? और आपको भगवान् श्रीराम-कृष्णकी भक्तिका यह चस्का भी कहाँसे लगा कि जो भगवान् श्रीराम-कृष्णका नाम लेते ही आप एकदमसे गद्‌गद हो जाते हैं ?'

मि० लीदने कहा—'मैं जब आपके परम पवित्रदेश भारतमें मेजर-पदपर था, तब मैंने वहाँ लगातार सात वर्षोंतक एक संस्कृतके विद्वान् ब्राह्मणसे संस्कृत भाषा पढ़ी थी। उन विद्वान् ब्राह्मणको मैं प्रतिमास पंद्रह रुपया दिया करता था। इसीसे मुझे हिंदू-फिलासफीका ज्ञान तथा उसमें अनुराग प्राप्त हो गया। अब मैं हिंदू फिलासफीसे बढ़कर और किसीको भी नहीं मानता हूँ। मैंने संस्कृत पढ़कर हिंदू-धर्मका जो ज्ञान प्राप्त किया, उसके आधारपर मेरे मनने निष्पक्ष होकर पूर्णरूपसे यह निश्चय और निर्णय कर लिया कि समस्त विश्वमें एकमात्र आपका हिंदूधर्म, सनातनधर्म ही पूर्ण है और इसी हिंदू-धर्मकी शरणमें आनेसे और हिंदूधर्मके ग्रन्थोंके अनुसार चलनेसे ही जीवका परम कल्याण हो सकता है। मेरा यह भी पूर्ण निश्चय है और विश्वास है कि भगवान् श्रीराम और भगवान् श्रीकृष्ण मनुष्य नहीं थे। वे साक्षात् परमात्माके ही पूर्ण अवतार थे। जितने भी अवतार और बड़े-बड़े ऋषि-मुनि, संत-महात्मा और सिद्ध योगी हुए हैं, वे एक-मात्र आपके परम पवित्र दिव्य देश भारतमें ही और आपकी परम पवित्र हिंदू-जातिमें ही हुए हैं। आपका यह देश भारतवर्ष धर्मप्राण और परम पवित्र और जगद्‌गुरु देश है। यह आपका परम सौभाग्य है कि जो आपने ऐसे परम पवित्रदेश भारतमें और परमपवित्र हिंदू-जातिमें जन्म लिया।'

उन श्रीकृष्णभक्त अंग्रेज मि० लीद साहबने मुझे श्रीमद्भगवद्गीताका निम्नलिखित एक श्लोक कई बार बड़े प्रेमसे सुनाया था, जो मुझे अबतक भलीभाँति याद है—

> निर्मानमोहा जितसङ्गदोषा
> अध्यात्मनित्या विनिवृत्तकामाः।
> द्वन्द्वैर्विमुक्ताः सुखदुःखसंज्ञै-
> र्गच्छन्त्यमूढाः पदमव्ययं तत् ॥
> (गीता १५। ५)

इसी प्रकार तुलसीकृत रामायणकी भी कितनी ही चौपाइयाँ और दोहे भी उन्होंने बड़े प्रेमसे गा-गाकर मुझे सुनाये थे, वे सब मुझे इस समय स्मरण नहीं रहे। उन्होंने मुझे एक दोहा यह सुनाया था जो मुझे आजतक याद है—

> सधन चोर मन मुदित मन धनी गृही जिमि फेंट।
> तिमि सुग्रीव बिभीषन राम-भरत की भेंट ॥

भारतमें लौटनेपर मैंने यह दोहा श्रीतुलसीकृत रामायणमें बहुत तलाश किया, पर मुझे कहीं मिला नहीं। उन श्रीकृष्णभक्त मि० लीद साहबका यह कहना था कि यह दोहा श्रीतुलसीकृत रामायणकी प्राचीन प्रतिमें मिलता है। उन्होंने इस दोहेका बड़ा ही सुन्दर अर्थ करके भी बड़े प्रेमसे मुझे सुनाया था। उन्होंने और भी बहुत-सी चौपाइयाँ और श्लोक मुझे सुनाये थे, जो बहुत समय हो जानेके कारण अब स्मरण नहीं रहे हैं।

उन श्रीकृष्णभक्त अंग्रेज मि० मेजर लीद साहबने जब मुझसे श्रीतुलसीकृत रामायण और श्रीमद्भगवद्गीताके सम्बन्धमें कुछ प्रश्न किये तो मुझे उस समय अपने घरके इन रामायण और श्रीमद्भगवद्गीता-जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थोंका तनिक भी ज्ञान नहीं था। इसलिये मुझसे प्रश्नोंका कुछ भी उत्तर देते नहीं बना। मैं चुप होकर अपना-सा मुँह लिये रह गया। मेरा सिर लज्जासे उनके चरणोंमें झुक गया और मैंने मन-ही-मन उन कृष्णभक्त अंग्रेजको अपना एक प्रकारसे गुरु मान लिया।

कहाँ तो एक विदेशी विधर्मी अंग्रेज, जिनका हमारे धर्मग्रन्थ रामायण, गीता, महाभारत, भागवत, उपनिषद् आदिके प्रति इतना आदर, सम्मान, प्रेम तथा ज्ञान है कि वे इन्हें बड़े आदरसे सुनहरी जिल्द बँधवाकर घरमें रखते हैं, नित्य स्वाध्याय करते हैं, उनके श्लोकों-चौपाइयोंको कण्ठस्थ करते हैं, उनके तत्त्वको जीवनमें उतारते हैं और अपनेको धन्य मानते हैं और कहाँ हम इनका परिचय प्राप्त करना तो दूर रहा, बिना ही देखे इनमें दोष बताते हैं। अस्तु, मैंने इंग्लैंडसे लौटकर आते ही सबसे पहले गीता और रामायणकी शरण ली। इनका अभ्यास करना प्रारम्भ कर दिया और बादमें श्रीकृष्णभक्त मि० लीदकी प्रेरणाके कारण ही मैंने महाभारत और उपनिषदोंका भी लगनके साथ स्वाध्याय किया।

फिर तो जब भी मैं कभी उत्सवोंपर भाषण देनेके

लिये जाता और वहाँ जब भी मैंने पाश्चात्य सभ्यताके रंगमें रँगे हमारे विद्वानोंके द्वारा भाषणोंमें भगवान् श्रीराम-कृष्ण-की और गीता-रामायणकी निन्दा करते सुनता तो मुझे बड़ा दुःख होता था। झटसे मुझे इंग्लैंडमें देखी उन श्रीकृष्ण-भक्त अंग्रेज मि० लीदकी बातें याद आ जाती थीं। मैं सोचता, ये कैसे हिंदू हैं कि जो भरी सभाओंमें भगवान् श्रीराम-कृष्णको एक साधारण मनुष्य बता रहे हैं, फिर भी अपनेको हिंदू मान रहे हैं; और दूसरी ओर वह इंग्लैंडका अंग्रेज है कि जिसने निरन्तर सात वर्षोंतक संस्कृत भाषा पढ़कर गीता-रामायणका अभ्यास किया और भगवान् श्रीराम-कृष्णको साक्षात् परमात्माका अवतार मानकर तथा उनकी भक्ति कर अपने जीवनको सफल कर रहा है। मेरा इसी बातको लेकर कई उपदेशकोंके साथ विवाद भी हो जाता था। अब तो मैं नित्यप्रति श्रीतुलसीकृत रामायणका और श्रीमद्भगवद्गीताका पाठ करता हूँ। भगवान् श्रीराम-कृष्णको साधारण मनुष्य नहीं, साक्षात् परब्रह्म परमात्मा मानता हूँ, उनका भजन करता हूँ और भजन करके बड़ी सुख-शान्तिका अनुभव करता हूँ।

यह है एक श्रीकृष्णभक्त अंग्रेजके जीवनकी महान् आश्चर्यजनक और हिंदूधर्मकी अद्भुत महत्ताको प्रकट करनेवाली एक बिल्कुल सत्य घटना, जो मैंने आपके सामने रक्खी है। आशा है, पाठक इस सत्य घटनासे शिक्षा ले अपने हिंदू-धर्मका दृढ़ताके साथ पालन करेंगे और परब्रह्म परमात्मा भगवान् श्रीराम-कृष्णका गुणगान कर तथा गीता-रामायणका स्वाध्याय कर अपना जन्म सफल करेंगे।

बोलो सनातनधर्मकी जय !

आदर्श व्यवहार

[कहानी]

(लेखक—श्रीदुर्गाशंकरजी व्यास)

उस दिन जब मैं दफ्तरसे घर आया, तो मेरा मन बहुत उदास था। मेरा लटका हुआ मुँह देखकर पत्नीने पूछा—'क्योंजी, क्या बात है ? आज ऐसी सूरत क्यों बना रक्खी है ?'

मैं उसे क्या बताता। जो कुछ मेरे साथ बीता था, उसे सुनाता तो वह भी चिन्तामें डूब जाती। पत्नी जो ठहरी। आदमीको बाहर जितनी कठिनाइयाँ प्रतिदिन जीविका कमानेमें उठानी पड़ती हैं, यदि वह उन सबका वर्णन अपनी पत्नीसे करने लगे, तो न मालूम एक सच्ची धर्मपत्नीके हृदयपर कितने दुःखके पहाड़ टूटा करें। उसे मानसिक क्षति न पहुँचानेकी सोचकर ही मैंने उसे अपनी उदासीका कारण न बताना अच्छा समझा।

मैं मन-ही-मन सोचने लगा कि न पाकिस्तान बनता और—और न मुझे दूसरोंकी घुड़कियाँ सहनी पड़तीं। रावलपिंडीमें अपना मकान था। मनियारीकी दूकान भी खूब चलती थी। दो लड़के जवान हो रहे थे। हम वहाँ स्वर्ग भोग रहे थे। पाकिस्तान बन जानेपर क्या पता था कि हमारे दोनों लड़के निर्दयताके साथ मार डाले जायँगे, दूकानको आग लगा दी जायगी और हमें वहाँसे प्राण बचाकर खाली हाथ हिंदुस्तानको शरण लेनी पड़ेगी।

उन्हीं दिनों दूसरोंके साथ जब हम दोनोंको अमृतसर पहुँचकर यहाँके लोगोंकी भिक्षापर पेट पालना पड़ा, तो कई बार मेरे मनमें आया करता था कि ऐसे जीवनसे तो नहरमें डूब मरना अच्छा है, किंतु मेरे मरनेके बाद पत्नीका हाल और भी कितना बुरा हो जायगा, इस विचारके आनेके साथ ही मेरा आत्महत्याका कार्यक्रम बदल जाता। उसको जीवित रखनेके लिये मैंने वृद्धावस्थामें फिरसे हाथ-पैर मारनेकी सोची, लेकिन बिना पैसेके तो पानकी दूकान भी नहीं चलायी जा सकती। चारों ओर निराशा मुँह फाड़े नजर आया करती। कितने ही दिन मुहल्लेवालों-से रोटियाँ माँग-माँगकर खाते रहे—और यह सब ऐसे लगता था, जैसे हम साँप खाया करते थे।

अन्तमें एक दिन पत्नीने मुझसे कहा—'कोई नौकरी ही कर लो।'

उसकी बात ठीक थी। किंतु मैं पढ़ा क्या था। केवल मुंडे अक्षर ही तो जानता था। किसी दफ्तरमें नौकरी तो मिल नहीं सकती थी। फिर भी शहरमें बहुत चक्कर

लगाये कि कहीं मुनीमीका काम किसी दूकानपर मिल सके; परंतु मेरी सूरतको देखकर ही कोई अपनी दूकानपर रखनेको तैयार न होता था ।

उन्हीं दिनों पत्नीने साहस करके मुहल्लेके तीन-चार घरोंमें बरतन माँजनेका काम शुरू कर दिया था ।

एक दिन वह उन्हींमेंसे एक बाबूके घर मुझे ले गयी। वह हमारी अनुनय-विनय सुनकर दूसरे दिन अपने दफ्तरके बड़े साहबके पास मुझे ले गया । मेरी आश्चर्यकी सीमा न रही, जब मैंने देखा कि मेरी रामकहानी सुनते-सुनते उनके हाथसे कलम गिर पड़ी थी और उनकी आँखें गीली हो गयी थीं ।

और उसी दिनसे मैं वहाँ एक चपरासीका काम करने लगा ।

मुझे वहाँ काम करते दो साल बीत गये थे । मैं उन युवक अफसरमें बूढ़े लोगों-जैसे गुणोंको देखा करता था । अफसरी गंध उनमें नाममात्रको न थी । दो सौके लगभग आदमी उनके नीचे काम करते थे । उन सबके साथ व्यवहार करते समय कभी क्रोधको उनके चेहरेपर आते मैंने नहीं देखा था । गरम बातको भी नरम बनाकर कहनेकी उनकी एक विशेष खूबी थी । सारा स्टाफ उनकी तारीफोंके पुल बाँधा करता था—उन्हींमें एक मैं भी था ।

एक दिन दूसरा चपरासी दफ्तर आया नहीं था। मैं अकेला ही सब काम करता जा रहा था । सेक्रेट्री साहबने मुझे पानीका गिलास लानेको कहा । मैं पानीका गिलास नलसे भरने जा रहा था कि दूसरे कमरेसे एक बाबूने आवाज दी—'चूनी ! मुझे भी पानी पिलाना ।'

दूसरी बार गिलास भरकर मैं तेजीसे पैर उठाता हुआ आया और जब जल्दीसे गिलास साहबके आगे बढ़ाया, तो गिलासका कुछ पानी उछलकर उनके सामने पड़े हुए लिखे कागजोंपर पड़ गया ।

साहबने घूरकर मेरी ओर देखा और कड़ककर कहा—'अंधे हो क्या ? इतने दिन तुम्हें यहाँ काम करते हो गये हैं लेकिन अभीतक गधे-के-गधे ही रहे ।'

वह पहला दिन था, जब साहबने मुझे फटकारा था। मैं अनमना-सा, उदास होकर रह गया । चुपकेसे कमरेसे बाहर जाकर अपने स्टूलपर गम्भीर मुद्रा धारण करके बैठ गया और न मालूम क्यों एकदम मेरे मनने साहबके सब गुणोंकी ओरसे पीठ फेर ली । मन-ही-मन मैं उन्हें कोसने लगा और उसी मूडमें मैंने एक बार यह भी सोचा कि संसारमें कोई भी मनुष्य गरीब आदमीके प्रति मनसे सहानुभूति नहीं किया करता—सब केवल दिखावा किया करते हैं ।

उस प्रताड़नाका मुझपर इतना बुरा प्रभाव पड़ा कि रातको मेरा मन रोटी खानेको भी नहीं हुआ । एक बार मनमें यह भी आया था कि यह चपरास छोड़ देनी चाहिये । नौकरी एक लानत होती है······परंतु हाय विवशता······यह विवशता ही तो मानवसे नीच-से-नीच कर्म भी करवा लेती है ।

पत्नी रोटी खानेके लिये बार-बार अनुरोध कर रही थी और मेरी रोनी सूरत बनाये रखनेका कारण भी पूछना चाहती थी । अन्तमें मुझे उसके स्त्री-हठके सामने परास्त होना पड़ा ।

तब उसने मुझे जो कुछ समझाया, उसका फल यह हुआ कि मेरा घाव भरना शुरू हो गया ।

हम बिस्तरोंपर रजाइयाँ ओढ़े सो रहे थे, इतनेमें एकाएक किसीने जोर-जोरसे हमारा दरवाजा खटखटाया ।

दरवाजा खोलनेपर, जो कुछ मैंने अपनी आँखोंसे देखा, मुझे उसपर विश्वास नहीं आ रहा था । ऐसा लगता था जैसे मैं कोई स्वप्न देख रहा था । मैं हक्का-बक्का-सा खड़ा था । एक मिनटके लिये मेरी आत्मा काँप गयी थी। जब मुझे चेतना आयी तो मेरे मुँहसे केवल तीन शब्द बड़ी कठिनाईसे निकल पाये थे—'सेक्रेट्री साहब, आप !'

बाबू मदनमोहन साथ था । उसने कहा—'चूनी ! सेक्रेट्री साहब तुमसे कुछ कहना चाहते हैं ।' मेरी कुछ समझमें नहीं आ रहा था । मैं आश्चर्यचकित खड़ा था । उन्हें कहाँ बिठाता । झिझक और शर्मके मारे मैं उन्हें अंदर आनेतकको कहनेका साहस सँजो नहीं पा रहा था ।

तभी एकाएक सेक्रेट्री साहब बोले—'चूनीलाल ! घबरा क्यों रहे हो ? घबरानेकी कोई जरूरत नहीं । हम सिर्फ दो मिनट अंदर बैठेंगे ।'

उनके ऐसा कहनेसे मैंने ऐसा अनुभव किया जैसे मेरे ऊपर किसीने घड़ों पानी डाल दिया हो । मेरी पत्नीने फिर मेरी सहायता की । वह दरवाजेपर आ गयी थी । उसने कहा—

'बाबू मदनमोहनजी ! साहबको अंदर ले आइये''''''हम गरीव''''''लोग''''''।'

अंदर आते समय साहब अत्यन्त स्नेहमयी वाणीमें कह रहे थे—'बहनजी ! संसारमें सब प्राणी एक ही भगवान्की संतान हैं''''''यह अमीरी तो एक झूठा माया-जाल है''''''।'

साहब प्रफुल्लचित्त मेरी बिछी चारपाईपर ही बैठ गये । उन्होंने मदनमोहनको भी अपने पास बिठा लिया। मैं सामने खड़ा रहा।

साहबने मेरा एक हाथ पकड़कर मुझे चारपाईपर बिठाते हुए सहमी हुई आवाजमें कहा—'चूनीलाल ! मुझे माफ कर दो । आज मैं ऐसे ही तुमपर बिगड़ पड़ा''' मालूम नहीं मुझे उस समय'''क्या'''हो'''मुझे इसका बड़ा खेद''''''है !' यह कहते-कहते उनका गला रूँध-सा गया।

इतना बड़ा साहब मुझसे माफी माँगने रातकी इस सर्दीमें मेरे घर आयेगा, ऐसी कभी कोई कल्पना कर ही नहीं सकता था।

मैं आश्चर्य और प्रसन्नतासे गद्गद हो रहा था। ऐसी ही दशा मेरी पत्नीकी हो रही थी। अपार आत्म-विभोर होनेके कारण मेरे मुँहसे कोई शब्द नहीं निकल रहा था। सब शब्द भावातिरेकके कारण गलेमें ही रुक गये थे। मैं एकटक उनकी ओर देखता ही जा रहा था।

साहबने फिर मेरी पीठपर हाथ रखकर आत्मीयता दिखाते हुए कहा—'देखो ! अब दिलमें कोई बात न रखना।' यह कहकर वे बाबू मदनमोहनको साथ लेकर चले गये।

उनके जानेके बाद हम दोनों कितनी ही देरतक साहबके इस आदर्श व्यवहारकी बातें करते-करते जागते रहे।

दूसरे दिन मुझे मदनमोहनने बताया कि 'साहबने रातको भोजन न करके प्रायश्चित्त भी किया था।' यह सुनकर मेरा दिल धक्-धक् करने लगा।

श्रीबगलामुखी देवीकी उपासना

(प्रेषक—ब्रह्मचारी श्रीपागलानन्दजी उपनाम पं० श्रीयज्ञदत्तजी शर्मा 'वानप्रस्थी' वैद्य)

[गताङ्क पृष्ठ १२३८ से आगे]

पात्रस्थापन

विशेषार्घके दक्षिणभागमें पाद्य, आचमनीय तथा मधुपर्कके पात्र सामान्यार्घ-स्थापनकी ही भाँति स्थापित करे। तत्पश्चात् एक पङ्क्तिमें गुरुपात्र, शक्तिपात्र, वीरपात्र, बलिपात्र और आत्मपात्रको सामान्यार्घकी विधिसे ही स्थापित करे। परंतु उन सबका संस्कार विशेषार्घके अमृतसे ही करना चाहिये। गुरु—पादुका-मन्त्रसे गुरुपात्रका, बाला-विद्यासे शक्तिपात्रका, अष्टाक्षर मन्त्रसे आत्मपात्रका तथा बगलामुखीके मूलमन्त्रसे अन्यान्य पात्रोंका अभिमन्त्रण और पूजन करके धेनु और मुद्राओंके प्रदर्शनपूर्वक समस्त पात्रोंका स्थापन करे।

तत्त्वशुद्धि

विशेषार्घसे किसी अन्य पात्रद्वारा तीर्थजल निकालकर निम्नाङ्कित सात मन्त्रोंद्वारा उसको अभिमन्त्रित करे।

१—ॐ प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥

२—ॐ पृथिव्यप्तेजोवाट्वाकाशानि मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥

३—ॐ प्रकृत्यहंकारबुद्धिमनःश्रोत्राणि मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥

४—ॐ त्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवचांसि मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥

५—ॐ पाणिपादपायूपस्थशब्दा मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥

६—ॐ स्पर्शरूपरसगन्धाकाशानि मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥

७—ॐ वायुस्तेजःसलिलं भूमिरात्मा च मे शुध्यन्तां ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा ॥

इस प्रकार अभिमन्त्रित करके 'आम् आधाराय नमः' ऐसा बोलकर उस जलके पात्रको आधारपर रक्खे। फिर तत्त्वमुद्रासे द्वितीय खण्डको हाथमें लेकर सिरपर गुरुपादुका बगलामुखी मन्त्रसे सींचे और इस प्रकार चतुर्विंश

गुरुओंको संतृप्त करके हृदयमें मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक तीन बार देवीको तृप्त करे। तदनन्तर उस पात्र-तत्त्वको मूल-विद्याके तीनों खण्डोंद्वारा पूजित करके करणद्वारा हथेलीका मार्जन करे। फिर दाहिने हाथमें त्रिकोण अङ्कित करके प्रथम सिक्त खण्ड-चतुष्टयको मध्यमें एवं तीनों कोणोंपर रक्खे। तदनन्तर तत्त्वमुद्राद्वारा मध्यवर्ती खण्डको लेकर मूल मन्त्रका उच्चारण करके 'आत्मतत्त्वेन स्थूलदेहं शोधयामि स्वाहा' ऐसा बोलकर उस मध्यवर्ती खण्डको स्वीकार करे। इसी प्रकार दाहिने कोणपर स्थित खण्डको हाथमें लेकर मूलमन्त्रका पाठ करके 'विद्यातत्त्वेन सूक्ष्मदेहं शोधयामि स्वाहा' ऐसा बोलकर उक्त दक्षिणकोणवर्ती खण्डको भी स्वीकार करे। तत्पश्चात् अपने सामनेके कोणपर स्थित पूर्वोक्त चतुर्थ भागको लेकर मूलमन्त्रके अन्तमें 'शिवतत्त्वेन परदेहं शोधयामि स्वाहा' ऐसा बोलकर उसे भी स्वीकार कर ले। फिर उत्तर दिशामें स्थित जलभागको लेकर मूलमन्त्रके अन्तमें 'सर्वतत्त्वेन तत्त्वातीतं जीवं शोधयामि स्वाहा' ऐसा बोलकर उसे भी स्वीकृत करे। तदनन्तर मूलमन्त्रका उच्चारण करते हुए दोनों हाथोंसे सम्पूर्ण अङ्गोंका मार्जन करे। यह तत्त्वशुद्धिका एक प्रकार हुआ। इसका दूसरा प्रकार भी है। जो यहाँ उद्धृत किया जाता है।

प्रकारान्तरसे तत्त्वशुद्धि

जैसा कि पहले कहा गया है; विशेषार्घपात्रसे पात्रान्तर-द्वारा जल निकालकर उसे आधारपर रक्खे। फिर 'वं' इस बीज-मन्त्रका उच्चारण करके धेनुमुद्राद्वारा उसका अमृतीकरण करे। फिर बायें हाथसे तत्त्वमुद्राद्वारा द्वितीय खण्डको लेकर दाहिने हाथमें पुष्प आदि रखकर सिरपर श्रीगुरुपादुका-मन्त्रसे चार गुरुओंका तीन बार पूजन और संतर्पण करके हृदयमें मूल-मन्त्रसे तीन बार देवीको संतृप्त करे। तदनन्तर उस पात्रमें मूल विद्याके तीन खण्डोंद्वारा तीन तत्त्वोंका पूजन करके निम्नाङ्कितरूपसे तत्त्व-शोधन करे।

उस पात्रसे एक चौथाई जल हाथमें लेकर ॐकार-सहित मूलमन्त्रका उच्चारण करके 'अं प्रकृत्यहंकारबुद्धि-मनःश्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणवाक्पादपाणिपायूपस्थशब्दस्पर्शरूप-रसगन्धाकाशवाय्वग्निसलिलभूम्यात्मकाशुद्धचतुर्विंशतितत्त्व-सहितम् आत्मतत्त्वेन स्थूलदेहं शोधयामि स्वाहा।'

इस मन्त्रवाक्यका उच्चारण करके जलको पी जाय और आचमन करे।

फिर उसी प्रकार एक चौथाई जल लेकर ॐकार और मूलमन्त्रका उच्चारण करके 'क' से लेकर 'म' तकके अक्षरोंका कं, खं, 'मायाकलाविद्यारागकालनियतिपुरुषा-त्मकशुद्धाशुद्धसप्ततत्त्वसहितं इत्यादि क्रमसे उच्चारण करके 'बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं विनाशय, विद्यातत्त्वेन सूक्ष्म-देहं शोधयामि स्वाहा'—यों बोलकर उस जलको पी ले और आचमन करे।

तदनन्तर पुनः पूर्ववत् उस पात्रसे एक चौथाई जल लेकर ॐकार, मूल-मन्त्र तथा 'य' से लेकर 'क्ष' तकके अक्षरों-का 'यं' 'रं' इत्यादि क्रमसे उच्चारण करके 'शिवशक्तिसदा-शिवेश्वरशुद्धविद्यात्मकशुद्धपञ्चतत्त्वसहितं ह्लीं ओं स्वाहा शिवतत्त्वेन परदेहं शोधयामि स्वाहा। यों बोलकर उस जलको पी ले और आचमन करे।

फिर उस पात्रका शेष सारा जल लेकर ॐकार, मूल-मन्त्र एवं समस्त मातृका-वर्णोका 'अं' 'आं' इत्यादि क्रमसे उच्चारण करके 'बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय, जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं विनाशय आत्मविद्या-शिवतत्त्वस्थैकलसूक्ष्मापराख्यदेहत्रयाभिमानिनं जीवात्मानं शोधयामि स्वाहा' यों बोलकर उसे पी ले और आचमन करे। फिर मूल-मन्त्र, सम्पूर्ण मातृकावर्ण तथा शिवशक्त्यादि समष्टि मन्त्रका पाठ करके दोनों हाथोंसे सर्वाङ्गका मार्जन करे तथा 'शिवशक्त्यात्मकोऽहं' इस निश्चयात्मक बोधसे सम्पन्न हो जाय।

बिन्दुस्वीकरण

अब बिन्दुस्वीकरणकी विधि बताते हैं। विशेषार्घ जल-दानसे लेकर देवीतर्पणान्त कर्म तत्त्वशुद्धिकी ही भाँति करके कुण्डलिनीका ध्यान करे। कुण्डलिनीको सुषुम्णामार्गसे ब्रह्मरन्ध्रस्थित परम शिवके साथ संयुक्त करके उनके सामरस्य सुखका अनुभव करते हुए पुनः अपनी जिह्वाके अग्रभागपर कुण्डलिनीके विराजमान होनेकी भावना करे। फिर विशेषार्घसे उद्धृत पूर्वोक्त जलपात्रको हाथमें लेकर बगलामुखीके मूलमन्त्रका उच्चारण करके 'ॐ आर्द्रं ज्वलति ज्योतिरहमस्मि ज्योतिर्ज्वलति ब्रह्माहमस्मि योऽहमस्मि ब्रह्मा-हमस्मि, अहमेवाहं जुहोमि स्वाहा' यों बोलकर कुण्डलिनीके मुखकमलमें उक्त पात्रस्थ जलको भावनाद्वारा स्थापित करके कुण्डलिनीकी कुलकुण्डमें स्थापना करे और यह भावना करे कि मैं शिवस्वरूप हूँ (शिवोऽहम्)।

योगपीठ-पूजा

तदनन्तर प्रोक्षणीपात्रमें विशेषार्घका जल निकालकर—

ॐ आत्मतत्त्वात्मने नमः । ॐ विद्यातत्त्वात्मने नमः । ॐ शिवतत्त्वात्मने नमः । ॐ सर्वतत्त्वात्मने नमः । इन मन्त्रोंद्वारा प्रोक्षणीपात्रस्थित जलसे अपना प्रोक्षण करे । फिर मूलमन्त्रसे पूजाके उपकरणोंका तथा श्रीचक्रका प्रोक्षण करके सर्वत्र धेनुमुद्राका प्रदर्शन करे । इस क्रियाद्वारा आत्म-पूजा सम्पादित होती है ।

तत्पश्चात् अपने सामने त्रिकोण मण्डलमें आधारसहित जलपात्रको स्थापित करके कलशके जलसे भरे । फिर विशेषार्घ पात्रस्थित अमृतका एक बिन्दु उसमें देकर अपने शरीरको पीतवस्त्राभूषणोंसे विभूषित करके अपने आपका देवीरूपमें चिन्तन करे । गुरुदेवताको प्रणाम करके पूर्ववत् कुण्डलिनीका स्थापन तथा परम शिवके साथ संयोजन करे । फिर उसी मार्गसे कुण्डलिनीको अपने स्थानपर लाकर स्थापित करनेके पश्चात् उसके तेजसे व्याप्त अपने शरीरका देवता-रूपसे चिन्तन करते हुए आत्मपूजा करे । उसका क्रम इस प्रकार है—पूर्वोक्त योगपीठके तौरपर अपने शरीरको सिंहासन मानकर मस्तकपर गुरुपादुका मन्त्रद्वारा गुरुदेवताका तीन बार पूजन और संतर्पण करे । तदनन्तर मूलाधारचक्रमें 'श्रीगणपतिश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि' यों कहकर गणेशजीका संतर्पण करे । तत्पश्चात् पीठन्यासके क्रमसे मूलाधारमें 'मं मण्डूकश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि' इत्यादिसे आरम्भ करके 'ॐ ह्रीं सर्वशक्तिकमलासनश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि' यहाँतकके मन्त्रवाक्योंको बोलकर उन-उन स्थानोंपर बायें हाथमें तत्त्वमुद्रापूर्वक शुद्धार्घखण्ड लेकर और दाहिने हाथमें तत्त्वमुद्रापूर्वक पुष्प और अक्षत लेकर पूजन एवं तर्पण करे । फिर हृदयकमलकी कर्णिकामें पूर्वोक्त यन्त्रकी भावना करके मूलमन्त्रके उच्चारणपूर्वक पुष्पाञ्जलिसे अपने देहका पूजन करते हुए पूर्वोक्त ध्यानके अनुसार भगवतीका ध्यान करे और उनके तेजसे व्याप्त अपने शरीरको देवीरूप मानकर 'श्रीमद्बगलामुखीश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि' ऐसा कहते हुए तीन बार सिरपर पुष्पाञ्जलि-समर्पणद्वारा पूजन करे । तदनन्तर मूलमन्त्रसे अपने शरीरको ही गन्धादि पञ्चोपचार मानकर अपने आपको श्रीदेवीका स्वरूप समझे । तत्पश्चात् पूर्वोक्त यन्त्रराज या प्रतिमाको पीठपर स्थापित करके पीठ-पूजा आरम्भ करे । यथा—

ॐ मं मण्डूकाय नमः । ॐ कं कालाग्निरुद्राय नमः । ॐ मूं मूलप्रकृत्यै नमः । ॐ आं आधारशक्त्यै नमः । ॐ कूं कूर्माय नमः । ॐ अं अनन्ताय नमः । ॐ वं वराहाय नमः । ॐ पं पृथिव्यै नमः ।

इन मन्त्रोंका उच्चारण करते हुए रसातलसे ऊपर-ऊपरके क्रमसे सात पाताललोकोंकी तथा पृथ्वीकी पूजा सम्पादित करके पूर्वादि चार दिशाओंमें चार समुद्रोंकी पूजा करे । क्रम इस प्रकार है—

ॐ इं इक्षुरससमुद्राय नमः । ॐ मं मदिरासमुद्राय नमः । ॐ घृं घृतसमुद्राय नमः । ॐ दुं दुग्धसमुद्राय नमः ।

फिर मध्य भागमें 'ॐ रं रत्नद्वीपाय नमः' इस मन्त्रसे रत्नद्वीपकी पूजा करे । रत्नद्वीपके पश्चिम भागमें पुष्परत्नकी, नैर्ऋत्यकोणमें नीलरत्नकी, दक्षिणमें वैडूर्य रत्नकी, आग्नेय कोणमें विद्रुम रत्नकी, पूर्वदिशामें मौक्तिक रत्नकी, ईशान-कोणमें मरकत रत्नकी, उत्तर दिशामें वज्ररत्नकी तथा वायव्य कोणमें गोमेदरत्नकी पूजा करे । मन्त्र इस प्रकार हैं—

ॐ अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं पुं पुष्परत्नाय नमः । ॐ लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः नीं नीलरत्नाय नमः । ॐ कं खं गं घं ङं वैं वैडूर्यरत्नाय नमः । ॐ चं छं जं झं ञं विं विद्रुमरत्नाय नमः । ॐ टं ठं डं ढं णं मौं मौक्तिक-रत्नाय नमः । ॐ तं थं दं धं नं मं मरकतरत्नाय नमः । ॐ पं फं बं भं मं वं वज्ररत्नाय नमः । ॐ यं रं लं वं गों गोमेदरत्नाय नमः ।

तदनन्तर मध्यभागमें पद्मराग रत्नकी, उसके भीतर स्वर्णपर्वतकी, उस पर्वतके ऊपर नन्दनवनकी और कल्प-वृक्षोंकी पूजा करे । मन्त्र इस प्रकार हैं—

ॐ शं षं सं हं ळं क्षं पं पद्मरागरत्नाय नमः । ॐ स्वं स्वर्णपर्वताय नमः । ॐ नं नन्दनोद्यानाय नमः । ॐ कं कल्पवृक्षेभ्यो नमः ।

फिर उस नन्दन एवं कल्पवृक्ष वनके भीतर 'ॐ वं वसन्तादिषडृतुभ्यो नमः' इस मन्त्रसे वसन्तादि छः ऋतुओंकी पूजा करे । ऋतुओंके मध्यभागमें विचित्र रत्न-भूमिकाकी, उसके ऊपर मणिमण्डपकी तथा उसके चारों ओर नवरत्नमय हेमप्राकारकी पूजा करे । मन्त्र इस प्रकार हैं—

ॐ विं विचित्ररत्नभूमिकायै नमः । ॐ मं मणिमण्डपाय नमः । ॐ नं नवरत्नमयहेमप्राकाराय नमः ।

तदनन्तर नैर्ऋत्यादि चार कोणोंमें वामावर्तक्रमसे ॐ कां कालरूपिण्यै शक्त्यै नमः । ॐ दें देहस्वरूपिण्यै शक्त्यै नमः । ॐ आं आकाशरूपिण्यै शक्त्यै नमः । ॐ शं शब्द-रूपिण्यै शक्त्यै नमः । इन मन्त्रोंद्वारा चतुर्विध शक्तियोंकी पूजा करे ।

इसके बाद मध्यभागमें 'ॐ समस्तयोगिनीभ्यो नमः ।' इस मन्त्रसे योगिनियोंकी पूजा करे । योगिनियोंके मध्यभागमें मणिवेदिकाकी, वेदिकाके ऊपर पञ्चप्रेतमय रत्नसिंहासनकी, सिंहासनके अधोभागमें आठ दिशाओंमें क्रमशः धर्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, अधर्म, अज्ञान, अवैराग्य और अनैश्वर्यकी पूजा करे । सिंहासनमें अनन्त, पद्म, आनन्दकंद, संविन्नाल, प्रकृतिमय पत्र, विकारमय केसर, कर्णिका, अर्कमण्डल, सोम-मण्डल और वह्निमण्डलकी पूजा करे । कर्णिकामें ही सत्त्व, रज, तम और आत्माकी पूजा करे । कर्णिकाके चारों दिशाओं और मध्यभागमें ज्ञानात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा, विद्या-तत्त्वात्मा तथा परतत्त्वात्माकी पूजा करे । तदनन्तर अपने सामनेसे लेकर आठों दिशाओंमें प्रदक्षिणक्रमसे जपा आदि आठ शक्तियोंकी पूजा करके मध्यभागमें मङ्गला एवं सर्वशक्ति-कमलासनकी पूजा करे । इस तरह पीठ-पूजा करके मूलमन्त्रसे मूर्तिका निर्माण करे । ऊपर पूजाके जिस क्रमका निर्देश किया गया है उसमें उपयुक्त होनेवाले मन्त्र क्रमसे इस प्रकार हैं—

ॐ मं मणिवेदिकायै नमः । ॐ पं पञ्चप्रेतमयरत्न-सिंहासनाय नमः । ॐ धं धर्माय नमः । ॐ ज्ञां ज्ञानाय नमः । ॐ वैं वैराग्याय नमः । ॐ ऐं ऐश्वर्याय नमः । ॐ अं अधर्माय नमः । ॐ अं अज्ञानाय नमः । ॐ अं अवैराग्याय नमः । ॐ अं अनैश्वर्याय नमः । ॐ अं अनन्ताय नमः । ॐ पं पद्माय नमः । ॐ आं आनन्दकंदाय नमः । ॐ सं संविन्नालाय नमः । ॐ प्रं प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः । ॐ विं विकारमयकेसरेभ्यो नमः । ॐ पं पञ्चाशद्वर्णबीजाढ्य-सर्वतत्त्वरूपायै कर्णिकायै नमः । ॐ अं द्वादशकलात्मने अर्कमण्डलाय नमः । ॐ षोडशकलात्मने सोममण्डलाय नमः । ॐ दशकलात्मने वह्निमण्डलाय नमः । ॐ सं प्रबोधात्मने सत्त्वाय नमः । ॐ रं प्रकृत्यात्मने रजसे नमः । ॐ तं मोहात्मने तमसे नमः । ॐ आं आत्मने नमः । ॐ ज्ञां ज्ञानात्मने नमः । ॐ अं अन्तरात्मने नमः । ॐ पं परमात्मने नमः । ॐ विं विद्यातत्त्वात्मने नमः । ॐ पं परतत्त्वात्मने नमः । ॐ जं जयायै नमः । ॐ विं विजयायै नमः । ॐ अं अजिताय नमः । ॐ अं अपराजितायै नमः । ॐ निं नित्यायै नमः । ॐ विं विलासिन्यै नमः । ॐ दों दोग्ध्र्यै नमः । ॐ अं अघोरायै नमः । ॐ मं मङ्गलायै नमः । ॐ ह्रीं सर्वशक्ति-कमलासनाय नमः ।

बगलामुखी देवीकी पूजाका क्रम

तत्पश्चात् त्रिखण्डा मुद्राद्वारा हाथमें फूल और अक्षत लेकर पूर्वोक्त रीतिसे देवीके स्वरूपका ध्यान करके हृदयमें श्रीचक्रका चिन्तन करे । साथ ही यह भावना करे कि उस श्रीचक्रमें पूर्वोक्तरूपवाली देवी बगलामुखी सपरिवार विराजमान हैं । इस भावनाके पश्चात् देवीकी मानसिक पूजा करके मूलाधारचक्रसे कुण्डलिनीको उठाकर षट्चक्र-भेदनके क्रमसे हृदयके भीतर प्रकाशमान तेजोमयी कुण्डलिनीको सुषुम्णामार्गसे ब्रह्मरन्ध्रमें ले जाकर परम शिवके साथ संयुक्त करे और सामरस्य सुखका अनुभव करते हुए निम्नाङ्कित मन्त्र बोलकर देवीका आवाहन करे ।

ह्रीं नमः श्रीबगलामुखि—

महापद्मवनान्तःस्थे कारणानन्दविग्रहे ।
सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि ॥
एह्येहि देवदेवेशि बगले सुरपूजिते ।
परामृतप्रिये शीघ्रं सांनिध्यं कुरु सिद्धिदे ॥
देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ।
यावत् त्वां पूजयिष्यामि तावत् त्वं सुस्थिरा भव ॥

'श्रीबगलामुखि देवि ! तुम महापद्मवनके भीतर विराज-मान हो । सर्वकारणभूत आनन्द तुम्हारा विग्रह है । मातः ! तुम सम्पूर्ण भूतोंके हितमें लगी रहती हो । परमेश्वरि ! आओ-आओ । देवदेवेश्वरि ! देवपूजिते बगले ! पधारो, पधारो ! परामृतप्रिये ! सिद्धिदायिनि ! जगदम्ब ! शीघ्र ही मेरे संनिकट उपस्थित होओ । देवेश्वरि ! तुम भक्तिमात्रसे ही सुलभ होती हो । परिवारसमन्विते देवि ! मैं जबतक तुम्हारी पूजा करूँ, तबतक तुम यहाँ सुस्थिर भावसे बैठी रहो ।'

'ॐ ह्रीं बगलामुखि सर्वदुष्टानां वाचं मुखं पदं स्तम्भय, जिह्वां कीलय कीलय बुद्धिं विनाशय स्वाहा ॐ नित्ये बगलामुखि एह्येहि मण्डलमध्ये अवतर अवतर मम सांनिध्यं कुरु कुरु ऐं बगलामुखि आवाहयामि नमः स्वाहा ।'

इन मन्त्रोंका उच्चारण करके श्वासयुक्त नासिका-

पुटोंके मार्गसे देवीके तेजको भीतर ले आकर यन्त्रबिन्दुस्थ कल्पित मूर्तिमें परम शिवके अङ्कमें विराजमान श्रीबगलामुखी देवीका ध्यान करते हुए 'ह्रीं' इस बीजका उच्चारण करके आवाहनी मुद्राद्वारा आवाहन करे।

जीवनमें स्वरोदयकी महत्ता

[नौली कर्म]

(लेखक—श्रीगुरुरामप्यारेजी अग्निहोत्री)

योगाभ्यासियोंके लिये हठयोगका विषय बड़ा ही आवश्यक है; किंतु आज हठयोगकी जानकारी सर्वसुलभ नहीं है। स्वर ही हठयोगका मूलाधार है। बिना स्वर-ज्ञानके योगाभ्यासकी साधना हो ही नहीं सकती। स्वर ही जीवन है; स्वर-साधना ही अमरत्व है और स्वर-साधनके प्रति उदासीनता ही मृत्यु है। योगाभ्यासमें स्वर-साधनाका केन्द्र हठयोग ही है। हठयोगमें षट्कर्म प्रमुख होते हैं। इन्हींके माध्यमसे स्वर-साधनाका दृढीकरण होता है। षट्कर्मोंके द्वारा ही शरीरमें स्थित त्रिधातुओं—वात, पित्त, कफका शोधन और परिष्करण होता है। पाञ्चभौतिक–(क्षिति, जल, अग्नि, वायु, आकाश) स्थूल शरीरमें त्रिधातुओंके सम होनेपर ही नैमित्तिक षट्कर्मकी साधना सुलभ होती है।

आन्तरिक शुद्धि दो प्रकारकी होती है—एक तो शारीरिक आन्तरिक शुद्धि और दूसरी मानसिक आन्तरिक शुद्धि। शरीरकी बाह्यशुद्धि तो स्नान आदिसे हो जाती है, किंतु शरीरकी आन्तरिक शुद्धि बिना षट्कर्मके कदापि सम्भव नहीं है। षट्कर्मोंमें नौलि, नेति, धौति, वस्ति, कपालभाति और त्राटक हैं। इनमें नौलि और नेति अभ्यासके लिये सर्वसुलभ हैं। धौति, वस्ति, कपालभाति और त्राटक एकके बाद एक कठिन होते गये हैं और इनकी साधना बिना योग्य गुरुके कदापि सम्भव नहीं है।

नौली कर्मकी साधनाके लिये पद्मासन सबसे उपयुक्त आसन है। पद्मासनमें स्थित होकर दाहिना हाथ दाहिने घुटनेपर और बाँया हाथ बाँये घुटनेपर रखना चाहिये। मेरुदण्ड (पीठकी रीढ़) को कुछ आगेकी ओर झुकाकर झटकेके साथ भीतरकी वायुको नाकके छिद्रोंके मार्गसे बाहर निकाल देना चाहिये। इस तरह प्राणवायुसे कुछ क्षणके लिये पेट और फेफड़ा खाली हो जायगा। इस बीच नाभि-स्थलके अगल-बगलके भागको संकुचितकर (यह संकुचन नाभिस्थलमें स्थित वायुके द्वारा होता है) मेरुदण्डकी तरफ खींचनेका प्रयत्न करना चाहिये। यह संकुचनकी प्रक्रिया कई दिनोंके अभ्याससे परिपुष्ट होती है। इस तरह संकुचनकी एक आवृत्तिको एक उड्डियान कहते हैं। एक श्वासमें अर्थात् जबतक दुबारा श्वास न ली जाय, पाँच उड्डियानतक सम्भव है।

लगातार पाँच दिनोंतक एक श्वासमें पाँच-ही-पाँच उड्डियान करना चाहिये। छठे दिनसे पंद्रहवें दिनतक एक श्वासमें छः-छः उड्डियान और सोलहवें दिनसे तीसवें दिनतक छःसे बढ़ाकर सात-सात उड्डियान एक श्वासमें किया जाना चाहिये अर्थात् पंद्रह दिनोंतक साठ उड्डियान और महीनेके अन्ततकमें सौ उड्डियानतक किया जाना सम्भव है। इतना अभ्यास हो जानेपर नाभिस्थलके अगल-बगल दो उभड़ती हुई नसें दिखलायी पड़ने लगती हैं। इन्हीं उभड़ती हुई नसोंको नालें कहा जाता है। जब इनका उभाड़ स्पष्ट दीखने लगे, तब शारीरिक परिरम्भण-द्वारा इन नालोंको इधर-उधर घुमाना चाहिये। इन नालोंमें वायु जब स्तम्भित होने लगती है, तब उनमें उभाड़ आ जाता है और शारीरिक प्रक्रियाके कारण वे नालें इधर-उधर होने लगती हैं। उड्डियान-प्रक्रियासे नसोंमें हल्कापन आ जाता है और वायुके प्रवाहसे वे फूलकर स्पष्ट दिखलायी पड़ने लगती हैं। नालोंके स्पष्ट दर्शनके पश्चात् उड्डियान-प्रक्रियाकी आवश्यकता नहीं रह जाती।

हठयोगके षट्कर्मोंमें नौली कर्म सर्वश्रेष्ठ है। नौली कर्मके बिना धौति और वस्तिकर्मकी सिद्धि नहीं होती। जबतक नसें पीठके अवयवोंसे ठीक प्रकारसे पृथक् होकर स्पष्ट न हों, तबतक इनके स्पष्टीकरणका अभ्यास सावधानी-पूर्वक करना चाहिये। खाली पेट होनेपर ही नौली कर्म साध्य होता है। यह कर्म स्त्री और पुरुष दोनोंके लिये साध्य

है; पर दस वर्षसे कम आयुके बालक-बालिकाओं एवं गर्भवती स्त्रियोंके लिये यह कर्म सर्वथा निषिद्ध है। साथ ही संग्रहणी, अतिसार रोगीको भी यह कर्म नहीं करना चाहिये। जिसकी आँतोंमें क्षत हो, शरीरमें शोथादि दोष हों, पित्तका अधिक प्रकोप हो; उसे भी नौली कर्म नहीं करना चाहिये।

नौली कर्मका अभ्यासी दीर्घजीवी होता है। उसका शरीर बाहर-भीतरसे शुद्ध होता है। शरीरमें वायुका स्तम्भन सुदृढ़ हो जाता है। शरीरमें स्फूर्ति आ जाती है। भूख-प्यासकी आस्था क्रमशः क्षीण हो जाती है। मन स्थिर होने लगता है। दिव्यताका विकास हो जाता है। पेटमें मल किञ्चित् मात्र भी नहीं रह पाता। अपान वायु वशमें हो जाती है। शरीरमें तापका अनुभव कभी नहीं होता। तिल्ली और वायु-गोलाके रोग शान्त हो जाते हैं।

नौली कर्मकी साधना शिवस्वरमें प्रारम्भ करनी चाहिये और इसी स्वरके माध्यमसे आन्तरिक वायुका निष्कासन उपयुक्त होता है। कर्म आरम्भ हो जानेपर वायुका प्रवेग चन्द्र-स्वर या सूर्य-स्वरमें प्रवाहित होता रहता है। उड्डियान साधनामें यदि चन्द्र-स्वर चलता रहे तो अल्पाभ्याससे ही उसकी साधना सम्भव हो जाती है। सूर्य-स्वरसे आन्तरिक वायु गरम होनेके साथ-साथ प्रकम्पित भी हो जाती है और नालोंका उभाड़ कुछ देरसे होता है। नौली कर्मका अभ्यास स्वस्थावस्थामें ही प्रारम्भ करना चाहिये। यह अभ्यास एक मिनटसे लेकर पाँच मिनटतक करनेका प्रयत्न करना चाहिये। वायुका स्तम्भन दृढ़ हो जानेपर नौली कर्म भी सरल हो जाता है।

मानव-जीवनकी सफलता

(ले०—श्रीमती रामप्यारी देवीजी, एम० एल० सी० (बिहार)

"मानव-जीवन 'भोग'के लिये नहीं, 'साधना'के लिये है। यह साधना परिवारमें रहकर, समाजमें रहकर करनी है। हमारे ऋषियोंके भी परिवार थे, कुल थे; फिर भी सम्पूर्ण विश्व आज उनका ऋणी है। भोग भी तो संयमसे ही सम्भव है। उद्दाम विषय-भोगसे भोगकी शक्ति ही नष्ट हो जाती है। फिर तो केवल पश्चात्ताप ही हाथ लगता है। ऐसे लोगोंको आध्यात्मिक सुख तो नहीं ही मिल पाता। वे भौतिक सुखसे भी हाथ धो बैठते हैं। इसलिये मानवको असत्की ओर नहीं सत्की ओर, अन्धकारकी ओर नहीं प्रकाशकी ओर तथा मृत्युकी ओर नहीं अमरताकी ओर बढ़ते रहना चाहिये।"

प्रायः हम देखते हैं कि संयमके कारण पशु विशेषरूपसे आधि-व्याधि या अभावोंके दुःखसे दुखी नहीं होते हैं। एक मानव-जाति ही ऐसी है कि नित्यके असंयम और प्रकृतिके विरुद्ध आचरणके कारण भयानक व्याधियोंकी शिकार है। मनुष्यको सोचनेकी भी शक्ति है, इसलिये मनुष्य मानसिक दुःखोंसे भी पीड़ित है। इस प्रकार मनुष्य दुहरी आगमें जल रहा है। मनुष्यकी इस दुहरी आगसे रक्षा करना सभीका कर्तव्य है।

इसलिये ऋषियोंका उद्देश्य और शास्त्रोंका आदेश है—'मानवमात्रमें देवत्वको जगाकर उनका कल्याण करना।' यही तो मानवका चरम उद्देश्य है। 'प्राणिनामार्तिनाशनम्'। परंतु तत्काल इस लघु उद्देश्यकी प्राप्तिके लिये हम सचेष्ट रहें। इसके साथ-साथ उस चरम उद्देश्यका भी साधन होता रहे; क्योंकि मानवका कल्याण विश्वके प्राणिमात्रके कल्याणमें ही निहित है।

मानवका कल्याण किस बातमें है—इस विषयपर लोगोंमें मतभेद है। आज विश्वके अधिकांश लोग भौतिक सुख-समृद्धिमें ही मानव-कल्याणका स्वप्न देखते हैं। इस भौतिक समृद्धिकी प्राप्तिके लिये वे सभी उचित-अनुचित उपायोंको अपनानेमें नहीं हिचकते। इसका आकर्षण, इसका मोह इतना प्रबल है कि मानव इसके पीछे पागल है। आज सारा विश्व ही भौतिकवादका शिकार है; परंतु हम देख रहे हैं कि भौतिकवादिताके पीछे पागल विश्वको कहीं भी शान्ति नहीं, कहीं भी सुख नहीं।

प्रत्येक व्यक्ति, प्रत्येक समाज, प्रत्येक राष्ट्र, दूसरे व्यक्ति या राष्ट्रका शोषण करके अधिक-से-अधिक समृद्ध

हो जाना चाह रहा है। इन शोषणकर्ताओंके बीच भी पारस्परिक मेल नहीं। एक शोषक व्यक्ति या राष्ट्र विश्वके अधिक-से-अधिक व्यक्तियों या राष्ट्रोंको शोषित करना चाह रहा है। इसमें वह किसी दूसरे प्रतिद्वन्द्वीको सहन नहीं कर सकता। सभी अपने शोषणक्षेत्रको, जिसको राजनीतिक भाषामें प्रभाव-क्षेत्र कहा जाता है, अधिक विस्तृत करनेकी ताकमें हैं। इससे पारस्परिक वैमनस्य बढ़ रहा है। आज इतने घातक अस्त्र-शस्त्र किसलिये बनाये जा रहे हैं? निर्माण करनेवाले राष्ट्रोंकी इस घोषणामें कि 'वे शान्ति चाहते हैं'—किसीको विश्वास नहीं है। ये घातक अस्त्र-शस्त्र इन शोषक राष्ट्रोंको आसुरी तृष्णाकी तृप्तिमें सहायक हों, इसके लिये बनाये जा रहे हैं। भौतिक सुख-समृद्धिकी उत्कट उपासना ही आज सारे विश्वके मानवोंके त्रास और आसन्न नाशका कारण बन रही है।

ऐसे समृद्ध व्यक्ति, राष्ट्र सबसे अधिक उद्विग्न और अपने बढ़े हुए लोभ और तृष्णाओंके कारण सबसे अधिक दीन बने हुए हैं। अपनी बढ़ी हुई आवश्यकताओंके कारण वे सर्वत्र लूट मचाये हुए हैं। कहा है—

बढ़त बढ़त सम्पति सलिल, मन सरोज बढ़ि जाय।
घटत घटत पर ना घटै बरु समूल कुम्हिलाय॥

परंतु यदि भौतिक समृद्धिकी उपासना न की जाय तो क्या लोगोंको सभी कारोबार छोड़कर बैठ जाना चाहिये? क्या सभी कर्मोंका त्याग मानवका कल्याण-साधन कर सकता है, क्या कमण्डलु लेकर जंगलकी राह लेनेसे लोग आत्मकल्याण कर सकते हैं? नहीं, यह भी बड़ी भूल है। जिस तरह भौतिक सुख-समृद्धिकी उद्दाम और उत्कट उपासना विश्वको खतरेमें डाले हुए है, उसी प्रकार निष्कर्म (अकर्मण्य) जीवनसे बढ़कर मनुष्य-जीवनका दूसरा दुरुपयोग नहीं हो सकता।

निष्कर्म जीवनसे तो शरीर-रक्षा भी सम्भव नहीं, ऐसा गीतामें भगवान् श्रीकृष्णने कहा है और साथ-ही-साथ भगवान् श्रीकृष्णने यह भी कहा है कि कोई भी देहधारी बिना कर्म किये रह नहीं सकता; क्योंकि प्रकृति उनसे कर्म करायेगी ही। इसलिये कर्म करना है, पर त्यागभावसे।

योग क्या है?

कर्म करते समय आत्मकल्याणके साथ यदि विश्व-कल्याणका भी योग मिलाया जाय, आत्माके साथ यदि हम विश्वात्माका चिन्तन करें, तभी सबका कल्याण-साधन हो सकता है। ऐसी अवस्थामें मानवका प्रत्येक कर्म विश्वके कल्याणके लिये होगा, जिससे मानवमात्रको स्थायी सुख और शान्ति मिल सकती है, इसीको 'योग' कहा है। अपनेको औरोंके साथ मिलाना, योग करना, आत्माको विश्वात्माके साथ मिलाना ही ऋषियोंका बहुप्रशंसित योग है। जब आप दूसरोंके दुःखमें दुखी और दूसरोंके सुखमें सुखका अनुभव करते हैं तो आप योगी हैं; क्योंकि आपकी आत्मा औरोंसे मिली है। तथा आप—'सीयराम मय सब जग जानी।' की दृष्टि पा लेते हैं।

सब प्रयत्न असफल

मानवकी जलनको दूर करनेके लिये राजनीतिक दलोंने चेष्टा की, फल कुछ न हुआ। आज पार्टीबंदीका बाजार गरम है; चोर-बाजार, लूट-खसोट, ईर्ष्या-द्वेष, घृणा-निन्दा, हिंसा-प्रतिहिंसाकी ज्वाला धधक रही है। शान्ति और सुखका नाम कहीं नहीं है। न्यायका गला घोट दिया गया। धार्मिक सम्प्रदायोंने भी कोई हल न पाया। सभी सम्प्रदाय, सभी पन्थ अपनी-अपनी दुन्दुभी बजा रहे हैं। पूजा और पर्व, यज्ञ और तीर्थयात्रा सब जारी है। फिर भी हम पाते हैं कि इन्द्रियलोलुपता, झूठ, धोखाबाजी, ठगी, परपीडन तथा नशा-सेवन जारी है।

फिर रास्ता क्या है?

रास्ता एक ही है—ऋषियोंके शास्त्रोंके बताये मार्गपर चलना और सबमें ईश्वरका दर्शन कर सबका कल्याण सोचना—करना।

आवश्यकता और अभाव

आप दुखी क्यों हैं? इसलिये कि आपको अमुक वस्तुका अभाव है। परंतु यह अभाव क्यों है? आप यदि ईमानदारीसे श्रम करते तो कोई कारण नहीं कि आपको किसी प्रकारका अभाव रहे। वह परमपिता अपनी अपार करुणाका द्वार किसीके लिये बंद नहीं करता तो भला आपके लिये उसकी करुणाकी कमी होगी, यह विश्वासके योग्य नहीं।

आप विचारकर देखें तो पता चलेगा कि आपने स्वयं अपने अभावोंका निर्माण किया है; क्योंकि आपने निरर्थक अपनी आवश्यकताको बढ़ाया है। यह आग, जिसमें आप

जल रहे हैं, आपने स्वयं लगायी है। सुखी जीवनके लिये भोजन, वस्त्र, आवास और सुन्दर विचार एवं भाव ही पर्याप्त है। परंतु देखें, जहाँ दो कुर्ते और दो जोड़ी धोतियोंसे काम चल सकता है, आपकी अपनी आवश्यकताकी पूर्ति दर्जनों कुर्ते, कमीज, कोट, पैन्ट, धोती और साड़ीसे नहीं हो पाती। एक गाढ़ेसे जहाँ काम चल सकता है, वहाँ आप कीमती-से-कीमती कपड़ोंसे भी संतुष्ट नहीं होते। भोजनके लिये जहाँ सादा भात, दाल, रोटी, सब्जी, दूध, फल आदि, जो पर्याप्त मात्रामें मिलते हैं, उनके बदले केक, बिस्कुट, आमलेट, पोच, कटलेट, चाय, चाट, काफी, बीयर, ह्विसकी, मांस, मछली, अंडा और न जाने क्या-क्या खानेकी आपने आदत डाल ली है। बीड़ी, चुरुट, सिगार, गाँजा, भाँग, चरस आदि ऐसी चीजोंकी व्यर्थ आदत डालकर आपने यह स्वयं आग लगायी है। ये वस्तुएँ न मिलें तो आप समझते हैं कि जीवनमें कोई सार नहीं। अनेक तरहके विषयोंके सेवनकी चाट अपनेमें लगाकर आपने अनगिनत अभावोंकी सृष्टि कर ली है। एकमहले साफ-सुथरे मकानमें यदि गुजर हो सकती है तो पँचमहले मकान और तरह-तरहके आडम्बरकी क्या आवश्यकता है।

साकार-निराकार

आज सारे विश्वमें फैले हुए धार्मिक विद्वेषके मूलमें कुछ ऐसे पंडे, पुजारी, मुल्ले, पादरी आदि तथाकथित धर्मके ठेकेदार हैं जो एक धर्मको श्रेष्ठ तथा दूसरेको नीच बताते हैं। जो सच्चे ज्ञानी हैं, उनके लिये सर्वत्र समता है, कोई ऊँच-नीच नहीं। चाहे साकारकी पूजा करे या निराकारकी, पूजा उस परब्रह्म सच्चिदानन्दकी ही होती है, जिसकी करुणा और दया सभी धर्म और सम्प्रदायवाले चाहते हैं। ऐसी अवस्थामें किसी धर्मकी निन्दासे केवल अपनी अज्ञानता ही झलकती है।

मेरी दृष्टिमें सभी धर्म पूज्य और मान्य हैं; क्योंकि सभीका एक ही उद्देश्य है, जैसा कि गोसाईंजीने भी कहा है—

परहित सरिस धरम नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

अतः यह व्यक्ति, धर्म और सम्प्रदायका नहीं, बल्कि मानवमात्रका उद्देश्य और चरम लक्ष्य है। भारतीय सिद्धान्त और दर्शन भी तो यही है। तभी तो कहा है—

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

पर आज धर्मनिरपेक्षताके नामपर हम अपना आदर्श, सभ्यता, इतिहास, संस्कृति और दर्शनको भूल रहे हैं। परिणामस्वरूप सुखको खोकर दुःखके पीछे पागल हैं और अनाचार, पापाचार, दुराचार और भ्रष्टाचारसे घिरकर लोक-परलोक सभी गँवा रहे हैं। आज आवश्यकता है नवयुवकोंमें भारतीय आदर्श और संस्कृतिको जाग्रत् करनेकी। आज जब हमारे देश और राज्यमें अन्य देशाभिमानी, धर्मावलम्बी शिक्षाके नामपर दयाभाव करके धर्मपरिवर्तनमें संलग्न हैं, वहाँ उस धर्मकी सचाइयोंको स्वीकार करते हुए क्या हम अपनी भारतीय सभ्यता और संस्कृतिकी रक्षा और आदर्श-पालनको नहीं बता सकते ? अब नवयुवकोंके प्रश्न हैं—वे क्या करें ?

नवयुवक क्या करें ?

जब मैं अपने देशके आजके नवयुवकोंको देखता हूँ तो लज्जा और दुःख दोनोंका अनुभव करता हूँ। धँसी हुई आँखें, पिचके हुए कपाल, झुकती हुई कमर, केवल हड्डियोंका कंकाल, सिरपर लंबे बालोंका भार जिसे तरह-तरहसे सजानेका प्रयास किया गया है। जिस देशके नवयुवकोंके तेजसे भरे मुखमण्डल, सबल बाहुओं और शेर-जैसी चौड़ी छातीमें अदम्य उत्साह और साहस देखकर अन्य देशोंके वीर सहम जाते थे, उसी देशमें अबलाओंसे भी अबल—ये नवयुवक क्या राष्ट्रकी रक्षाका भार सँभाल सकेंगे ? क्या यह पौरुषसे हीन क्लीबोंका देश बनने जा रहा है ? ऐसा क्यों हो रहा है ?

ऐसा इसलिये हो रहा है कि हम पश्चिमकी भोगप्रधान सभ्यताकी चकाचौंधमें आ गये हैं। हम अपने आदर्शसे च्युत हो गये हैं। हम आँखें मूँदकर पश्चिमवालोंकी बुरी नकल करनेमें अपनी शान समझते हैं।

भारतीय जीवनके आदर्शोंको ठुकराकर पश्चिमकी बुराइयोंको हमने अपनाया है। आज हम घरके रहे न घाटके। जो वस्तु एकके लिये गुणकारी है, वह हर एकके लिये गुणकारी होगी, ऐसा मानना भूल है। जो बातें पश्चिमवालोंके लिये अच्छी हो सकती हैं, हमारे लिये भी अच्छी होंगी, यह कैसे कहा जाय। इसीलिये देश-देशके जीवनके ढंगमें

भिन्नता है। सदियोंके अनुभवके आधारपर जीवनके तौर-तरीके, जिसको संस्कृति कहते हैं, विकसित होते हैं। उसे छोड़कर हम अपना अनिष्ट ही करते हैं।

भारतमें ऋषियोंने बहुत सोच-विचारकर जीवनके चार आश्रमोंका निर्माण और विकास किया था। ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास। जिनके आरम्भिक कालमें ब्रह्मचर्यका पालन किये बिना कोई भी जीवनके लक्ष्यतक पहुँचनेका सपना देखता है तो वह भूल करता है। इसलिये अपनी सभ्यताको अपनाकर धीर, वीर, मनस्वी और यशस्वी बनकर देशको समृद्धिशाली और तेजोमय बनावें।

नेत्र-दान

[कहानी—सत्य घटनापर आधारित]

(लेखक—श्रीकृष्णगोपालजी माथुर)

(१)

'श्रीहरिः शरणम्'—मन्त्रका निरन्तर जप करनेसे दो दिनमें ही मेरी आँखकी ललाई दूर होकर आँख खुलने लगी, जिसे देखकर डाक्टरजी आश्चर्य-चकित हो गये। आपरेशनके बाद बदल-बदलकर दवाइयाँ आँखमें डालते रहनेपर भी सफलता न मिलनेसे वे हताश हो गये थे। मैं भी बहुत चिन्तित था।

'भगवान्की अहैतुकी कृपाका पार नहीं है। किंतु आज हमारी पुत्री हेमलता होती तो महेशके राखी बाँधकर अधिक-से-अधिक दस्तूर लेनेको मचलती, जिसे देखकर हम कितने प्रसन्न होते!'

'पर, हमने उसके वियोग-जनित दुःखको बरबस हृदयमें छिपाकर उसके दोनों नेत्रोंका दान डाक्टरके द्वारा करवा दिया। इस परोपकारसे हमको कितनी प्रसन्नता हो रही है। अब हमको नीलाचलनाथ भगवान् श्रीजगन्नाथजीका ध्यान करते हुए अपने नेत्रोंकी रक्षाके लिये निरन्तर 'श्रीहरिः शरणम्' मन्त्रका जप करते रहना चाहिये।'

पति-पत्नी उपर्युक्त वार्तालाप कर ही रहे थे कि बाहर किसीने कपाट खटखटाये। सुनकर करुणाशंकर उठनेवाला ही था कि करुणाने दौड़कर द्वार खोल दिया। सामने ही एक अपरिचित लड़कीको खड़ी देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। लड़की शुभा हाथके सँजोये हुए थालको दिखाते हुए बोली—'भाई महेशको राखी बाँधने आयी हूँ। स्वप्नमें भगवान्का मुझे ऐसा आदेश मिला है।'

शुभाको आदरके साथ भीतर बिठाकर पति-पत्नी उसकी आँखकी ओर बड़े ध्यानसे देखने लगे। उन्हें हेमलताकी स्मृति ताजा हो आयी। परिचय-सम्बन्धी बातचीतसे उन्हें यह भी ज्ञात हो गया कि हेमलताकी एक आँख डाक्टरने शुभाके लगायी है और वह आज सगी बहनके समान ही भाईके राखी बाँधने आयी है। शुभाके माता-पिताने उसे कृतज्ञता-ज्ञापन एवं नया आत्मीय सम्बन्ध-स्थापनार्थ राखी बाँधनेको उसके बड़े भाईके साथ भेजा है। महेशने राखी बँधाकर उसे नयी बहन बनाया।

× × × ×

इसके तीन मास पश्चात् करुणाशंकरको एक पत्र डाकद्वारा जूनागढ़से मिला। बड़ी उत्सुकतासे उसने पत्रमें पढ़ा—'पूज्य पिताजी! सादर चरण-स्पर्श। मैं आपके लिये अपरिचित चित्रकार, कालेजका एक नवयुवक छात्र हूँ। कृपया बहन हेमलताका चित्र मुझे भिजवा दीजिये। मैं उसका बड़ा चित्र········'इतना पढ़ते ही करुणाशंकरके ललाटपर क्रोधकी रेखाएँ उभर आयीं। पत्नीको पत्र थमाते हुए बोला—'देखो, यह कौन गुंडा है, जो हमारी लाड़लीका चित्र अपने कमरेमें सजानेको माँगता है?'

करुणाने पत्र आगे पढ़ा—'·····बनाकर आपको भेजूँगा। आपको शायद ज्ञात नहीं होगा कि उसका एक नेत्र डाक्टरने मेरे लगाया है। उसीकी ज्योतिसे मेरा अध्ययन एवं चित्रकलाका कार्य चल रहा है और इस प्रकार मेरा जीवन सार्थक बन गया है। मैं आजीवन उसका और आपका ऋणी रहूँगा। कभी भी मेरे योग्य

कोई सेवा हो, अवश्य लिखियेगा। मैं उसे तन-मन-धनसे पूरा करके अपनेको धन्य-धन्य मानूँगा।'

—आपका प्यारा पोष्य-पुत्रके समान वत्स——प्राणनाथ।

पत्र पढ़कर पति-पत्नी बड़े ही आनन्दित हुए। उन्हें हेमलताका बड़ा चित्र भी प्राप्त हो गया।

(२)

करुणाशंकर अनाजका धंधा करता था। नये-पुरानेका मिश्रण न कर अलग-अलग भावोंमें थोड़ा लाभ जोड़कर सही-सच्ची तराजूसे तौलकर प्रत्येक ग्राहकको अन्न बेचता था। बाजारमें उसकी ईमानदारीसे प्रभावित होकर ग्राहक उसीकी दूकानपर इतने आते कि भारी भीड़के कारण मार्ग भी अवरुद्ध हो जाता था। इतना करते हुए पति-पत्नी दोनों ही नियत समयपर भगवान्‌का भजन करते और दीन-दुखियोंको यथाशक्ति दान दिया करते थे।

कालान्तरमें कन्ट्रोलके कारण उसका यह धंधा बंद हो गया। इतनी पूँजी पास नहीं थी कि कोई और धंधा किया जाता। अतः घरपर ही रहकर दोनों भगवद्-भजनमें अधिक समय लगाने लगे और जो थोड़ी पूँजी पास थी, उससे तथा भवनका सामान बेचकर अपना गुजर चलाने लगे।

भगवद्-भजनसे उनके हृदयमें शान्ति रहती और गरीबीका दुःख नहीं हो पाता था। इस प्रकार कुछ दिन जाते जाने नहीं गये। शनैः-शनैः बुढ़ापेका आगमन शीघ्रतासे होने लगा। देखते-ही-देखते कालेसे सफेद बाल एवं मुख दन्त-विहीन हो गया। इन्द्रियाँ तो शिथिल होनी ही थीं। शारीरिक शक्ति घटती चली गयी। अब न तो भोजनकी व्यवस्था और न शरीरमें शक्ति। कहा है—'यमराजकी दूती वृद्धावस्था पलित-रूपमें सब लोगोंके कानके पास आकर कहती है कि परस्त्री-परधनका त्याग करो और भगवान्‌के चरणकमलोंकी सेवा करो।' शय्या, वस्त्र, चन्दन, मधुर हास्य, वीणा, वाणी और सुन्दरी नारी—ये सब भूखे-प्यासे लोगोंको अच्छे नहीं लगते। वास्तवमें सभी क्रियाओंका—आनन्दका मूल सेर भर चावल ही है।* इसीसे विवश हो करुणाशंकरने पत्रद्वारा प्राणनाथ-को अपनी दयनीय दशासे अवगत करा दिया।

पूरे दो मास बीत गये, किंतु प्राणनाथकी ओरसे कोई पत्रोत्तर नहीं आया, जिसकी करुणाशंकरको स्वप्नमें भी शंका नहीं थी। उसने सोचा, दुनिया है। कहा है—

सभी सहायक सबल के कोई न निबल सहाय।
पवन जगावत आग को दीपहि देत बुझाय॥

एक दिन मध्याह्नके समय एक खद्दरधारी नवयुवकने अचानक आकर करुणाशंकरके चरणोंमें अपना मस्तक रख दिया और पत्रव्यवहार तथा १०००) रुपयेके नोट उसे देते हुए कर जोड़ विनम्रभावसे कहा—'पिताजी! क्षमा करें, मैं देरसे आ पाया, पर आपके शुभाशीर्वादसे मुझे ऊँचा पद प्राप्त हो गया है। आप चिन्ता न करें और सुख-शान्तिसे रहकर प्रेमसहित भगवद्भजन करते रहें। मैं प्रतिमास निरन्तर आर्थिक-सेवा भेजता रहूँगा।'

प्राणनाथको पहचानकर उसके ऐसे व्यवहारसे करुणा-शंकरको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। ओहो, परमात्मन्! आपकी सृष्टिमें आज भी ऐसे आदर्श सेवाभावी मौजूद हैं! प्रकटमें बोला—'बेटा! तुम्हारा सर्वदा मङ्गल हो; किंतु अभी तो थोड़े ही रुपये·····'आगे प्राणनाथने बोलने नहीं दिया, अतः आग्रहसे एक हजार रुपये ही उसे स्वीकार करने पड़े।

इधर, परिणीता शुभा ससुरालवालोंकी स्वीकृति लेकर प्रति सप्ताह आकर भाई महेश और माता-पिताके समान करुणाशंकर-करुणाके अभावोंकी पूर्ति कर जाया करती थी। इस प्रकार शुभा और प्राणनाथकी ओरसे निरन्तर सहयोग पाकर वृद्ध दम्पतिका समय निश्चिन्तताके साथ भगवद्-भजन करनेमें व्यतीत होने लगा और भजनके प्रभावसे ही उनकी नेत्र-ज्योति भी ज्यों-की-त्यों कायम रही।

आगे—उत्तम संस्कारोंमें पला महेश विद्या-बुद्धि-सम्पन्न होकर आजीविका कमाने लगा। उसने माता-

---

* कृतान्तस्य दूती जरा कर्णमूले
समागत्य वक्तीति लोकाः शृणुध्वम्।
परस्त्रीपरद्रव्यवाञ्छां त्यजध्वं
भजध्वं रमानाथपादारविन्दम्॥१३॥
शय्या वस्त्रं चन्दनं चारुहास्यं
वीणा वाणी सुन्दरी या च नारी।
न भ्राजन्ते क्षुत्पिपासातुराणां
सर्वारम्भास्तण्डुलप्रस्थमूलाः॥२॥
(सुभाषितरत्नभाण्डागारम्)

पिताकी सेवाका ध्येय बनाकर बहन शुभा और भाई प्राणनाथके उपकारोंको आजन्म नहीं भुलाया और वह स्वयं भगवत्परायण होकर परोपकारके कार्य करनेमें लगा रहा।

धर्मनिरपेक्षिताका अभिशाप

(लेखक—श्रीराजेन्द्रप्रसादजी जैन)

भ्रष्टाचार, उत्कोच, खाद्यपदार्थों तथा ओषधियोंमें मिलावट, छल-कपट, हत्या, चोरी, बिना टिकट रेलयात्रा तथा प्रत्येक कोटिके अपराधोंमें निरन्तर वृद्धि।

हम यह अस्वीकार नहीं करते कि जो धार्मिक नहीं हैं, उनमें भी बहुतसे चरित्रवान् व्यक्ति देखनेको मिलते हैं और धार्मिकोंमें भी कुछ चरित्रहीन व्यक्ति हो सकते हैं परंतु इतनेसे ही यह सिद्ध नहीं हो जाता कि नैतिकताको धर्मकी आवश्यकता नहीं है। राष्ट्र वही सबल है, जहाँ सुशासन और व्यवस्था हो। सुशासन और व्यवस्था वहीं है जहाँ प्रजा स्वेच्छासे विधि-नियमोंका पालन करती हो और उन्हीं विधि-नियमोंका पालन सुगम होता है, जिनका आधार नैतिकता हो और नैतिकता वहीं स्थायी होती है, जिसका आधार धर्म हो। इतिहास और अनुभव बतलाता है कि नैतिकताके विकासके लिये धर्म बहुत प्रबल साधन है। यदि कबीर और अकबर बिना शिक्षा प्राप्त किये ही विद्वान् बन गये और अनेक लोग पढ़-लिखकर भी मूर्ख ही बने रहते हैं तो इससे यह सिद्ध नहीं हो जाता कि शिक्षाका ज्ञानार्जनसे कोई सम्बन्ध नहीं। जिस नैतिकताका कोई धार्मिक आधार नहीं, उसकी नींव बहुत कच्ची है। केवल युक्ति तथा राजदण्डके भयपर नैतिकता नहीं पनप सकती; कोरी युक्ति मनुष्यको स्वार्थकी ओर और कोरा राजदण्डका भय धूर्तताकी ओर ले जाता है। इसीका परिणाम है कि आज सारा भारत स्वार्थपरायण तथा धूर्त बनता जा रहा है!

धर्मनिरपेक्षिताका दूसरा अभिशाप इस रूपमें मिला है कि यहाँ कम्युनिस्ट, ईसाई तथा मुसलमानोंकी गतिविधियाँ तीव्र हो उठी हैं। भारतीय कम्युनिस्टोंके पीछे कम्युनिस्ट राष्ट्रोंका बल है। भारतीय ईसाइयोंके पीछे ईसाई राष्ट्रोंका बल है। भारतीय मुसलमानोंके पीछे मुस्लिम राष्ट्रोंका बल है। अकेले हिंदू ही ऐसे हैं जिनके पीछे कोई राजसत्ता नहीं, किसी राष्ट्रका बल नहीं। जिन्हें सताते समय भारतसरकार-को किसी भी देशसे सम्बन्ध बिगड़ जानेका भय नहीं, जिनकी व्यथा सुननेके लिये संसारके किसी भी राष्ट्रके पास समय नहीं। आज हिंदुओंकी स्थिति एक परित्यक्ता स्त्री-जैसी है, जिसके स्वामीके मन और बुद्धिको वेश्याओंने हर लिया है। ब्रिटिश कालसे भी भयानक स्थिति आज हिंदुओंके सम्मुख है। उस समय कुछ देशी राजा-महाराजा एवं कुछ उद्योगपति हिंदुओंके पीछे थे। अब राजा-महाराजा समाप्त कर दिये गये और उद्योगपति अन्ताराष्ट्रीय हो गये। उनका व्यापार अब भारततक सीमित नहीं है। वे मुस्लिम देशोंमें हाथ-पाँव पसार रहे हैं। अब उनका व्यापार भारतीय पूँजीपर आश्रित नहीं है, उन्हें ईसाई पूँजीकी आवश्यकता है। अतः हिंदू-हितोंकी अपेक्षा ईसाई-मुसल्मानोंकी सहानुभूतिका उनके लिये अधिक मूल्य है। तभी तो कलके सनातनधर्मके स्तम्भ आज गोहत्याके प्रचार तथा हिंदीके विरोधमें आकाश-पाताल एक कर रहे हैं। परंतु ऐसा न तो हमारे राजनयिक ही समझते हैं और न उद्योगपति ही कि वे जिस वृक्षकी डालीपर बैठे हैं, उसे ही काट रहे हैं। यदि कम्युनिज्म, इस्लाम और ईसाइयतकी भाँति हिंदूधर्मको भी राज्याश्रय प्राप्त हुआ तो ही वह पनप सकेगा और इनसे मोर्चा लेनेमें समर्थ होगा। नहीं तो, आगामी पचास वर्षोंमें हिंदूधर्म तथा हिंदुत्वका पूर्णतः लोप हो जायगा और उसके साथ हमारे राजनयिक और उद्योगपतियोंका भी।

धर्मनिरपेक्षिताका एक अभिशाप यह है कि इसने हमें हमारे इतिहास तथा अतीतसे काट दिया है। भारतका इतिहास हिंदुत्वका इतिहास है। भारतीय सभ्यता हिंदू सभ्यता है, भारतीय कलाएँ हिंदू कलाएँ हैं। अतः अपनेको धर्मनिरपेक्ष सिद्ध करनेके लिये हमने अपनी सभ्यता, संस्कृति और कलाओंको भी तिलाञ्जलि दे दी। ईरानने अपना पारसीधर्म छोड़कर इस्लामधर्म स्वीकार किया; परंतु उसने अपनी भाषा, वेश-भूषा, कला और संस्कृतिको नहीं छोड़ा। वह अपने सुहराब, रुस्तम, दारा और नौशेरवाँपर आज भी गर्व करता है। चीन कम्युनिस्ट हो गया, परंतु उसने चीनी भाषा नहीं छोड़ी। यूरोपने ईसाई-धर्म स्वीकार किया, परंतु उन्होंने यूनान तथा रोमके इतिहास

तथा कलाओंको नहीं ठुकराया। भारतमें वह प्रत्येक चीज, जिसका हिंदुओंसे सम्बन्ध रहा है, धर्मनिरपेक्षिताके नामपर ठुकरायी जा रही है। यहाँतक कि यहाँके तीज-त्यौहारोंको भी समाप्त करनेका षड्यन्त्र चल रहा है। यहाँ पुरानी मस्जिदोंके जीर्णोद्धारके लिये राज्य अनुदान दे सकता है; परंतु मन्दिर चाहे कितना ही ऐतिहासिक महत्त्व रखता हो, राज्यसे सहायता प्राप्त नहीं कर सकता। इतिहासमें राम और कृष्ण-का कितना ही महत्त्व क्यों न रहा हो, परंतु क्योंकि उनका हिंदूधर्मसे भी सम्बन्ध है, अतः उनका नाम नहीं लिया जा सकता। पिछले भारत-पाक-युद्धमें जहाँ पाकिस्तान उमर और अलीका नाम ले-लेकर अपने सैनिकोंमें उत्साह भरता था, वहाँ हमारे सैनिक गांधी एवं नेहरूसे पूर्व नहीं जा सकते थे। सहस्रों अणुबमसे भी अधिक शक्ति जिस 'हर-हर महादेव' 'जय काली' और बजरंगबली'के उद्घोषमें है वह हमारे यहाँ नहीं लग सकता। अन्न बचानेके लिये प्रत्येक सोमवारको एकाशना करनेका जो आन्दोलन स्व० लालबहादुर शास्त्रीने चलाया था, वह असफल भले ही हो जाय, यह हमें स्वीकार है; परंतु यह स्वीकार नहीं कि एकादशीका महत्त्व समझाकर हम अपने उद्देश्यमें सफलता प्राप्त करें। 'अमृतं मा मृत्युर्गमय'—मुझे जीवनसे मृत्युकी ओर ले चल।

धर्मनिरपेक्षिताने हमारे देशमें विघटनको जन्म दिया है। हिंदू होनेमें हानि है, हिंदू कहलानेमें हानि है। मेरठ कालेजमें कुछ मुस्लिम राजपूतोंके लड़के पढ़ते थे। एक लड़का कई दिनोंतक अनुपस्थित रहा। बातों-ही-बातोंमें मेरे एक साथीने पूछा—'कहाँ गये थे?' उत्तर मिला—'बहिनके यहाँ भात देने।' पूछा 'तुम तो मुसलमान हो, तुम्हारे यहाँ भात कैसा।' उत्तर मिला 'हम राजपूत हैं, हमारे यहाँ हिंदू आचार-विचार चलता है।' पूछा कि 'अपनेको मुसलमान क्यों कहते हो।' उत्तर मिला 'मुसल्मान कहनेसे हमारे पूर्वज जज़ियेसे बच गये, समाजमें सम्मान और राज्यमें उच्चपद मिलने लगे।' पूछा—'अब तो इस्लामी राज्य नहीं, अब क्यों मुसल्मान बने हो।' उत्तर मिला—'इससे नौकरी पानेमें सुविधा रहती है। उत्तर प्रदेशके १४ प्रतिशत मुसल्मानोंके लिये ३३ प्रतिशत नौकरियाँ सुरक्षित हैं, फिर मुसल्मानोंमें शिक्षाकी कमी है। यहाँ प्रतियोगिता अधिक कठिन नहीं है।' और यह स्थिति आज स्वराज्यमें भी चली आ रही है। मुसल्मान होनेके कारण आप चुनाव जीत सकते हैं; क्योंकि ऐसा करनेसे हम अपनेको धर्मनिरपेक्ष सिद्ध कर सकते हैं। अपनेको हिंदू कहनेमें हानि-ही-हानि है। जहाँ आपने सिद्ध कर दिया कि हम हिंदू नहीं हैं, आपके आगेके काँटे अपने-आप हटते चले जायँगे। पहले सिक्ख अपनेको हिंदू कहते थे, हिंदू थे ही तो उनकी कहीं सुनवाई नहीं थी। उन्होंने अपनेको हिंदुओंसे पृथक् सिद्ध कर दिखाया और जो चाहते थे, प्राप्त कर लिया। दक्षिणके अन्नादुरैने घोषणा की कि हम आर्य नहीं हैं और जो चाहते थे, प्राप्त कर लिया। आदिवासी हिंदू चाहे नागालैंडका हो, चाहे छोटा नागपुरका उपेक्षणीय है—ईसाई बनते ही उनमें असीम बलका संचार हो गया। हिंदूमञ्चसे कोई भी माँग की जाती है, तो उसके पीछे कितना ही प्रबल लोकमत और कितना ही औचित्य क्यों न हो, सुनी नहीं जाती और जब वे ही हिंदू-विघटनकारी वृत्तियोंका प्रदर्शन करके उसी माँगको रखते हैं, तो वह स्वीकृत हो जाती है। हमारा विश्वास है कि यदि गोरक्षाकी माँग सिक्ख, शिव-सेना अथवा बलचितसेना करेंगी तो भारतसरकारके सारे अर्थशास्त्रियोंका मुँह बंद हो जायगा और वह माँग स्वीकृत हो जायगी। हरिजन-मन्दिर-प्रवेश अधिनियमके विरुद्ध जैनियों और पुरातन पन्थियोंने सम्मिलित आन्दोलन किया और वह असफल रहा। कुछ समय पश्चात् कुछ जैनी पं० पन्तजीसे मिले और कहा कि 'हम हिंदू नहीं हैं' और जैनमन्दिर हरिजनप्रवेश अधिनियमसे मुक्त कर दिये गये। पारसी तथा यहूदी अपने धर्मस्थानोंमें किसी अन्य धर्मावलम्बीको नहीं जाने देते; परंतु राज्य उनको कुछ नहीं कहता। बहुविवाहकी इस्लाम और हिंदूधर्म दोनोंमें अनुमति है, परंतु हिंदुओंके लिये वह वर्जित कर दिया गया। मुसल्मानोंको छूट दे दी गयी। तलाक हिंदूधर्म तथा रोमन कैथलिक ईसाई धर्म दोनोंके विरुद्ध है, परंतु हमारी सरकारने तलाकका उपहार केवल हिंदूस्त्रियोंको प्रदान किया है। रोमन कैथलिक महिलाएँ अब भी उससे वञ्चित हैं। साम्प्रदायिक सौहार्द बनाये रखनेका सारा उत्तरदायित्व हिंदुओंका है। मुसल्मानोंमें जो साम्प्रदायिकता है, वह देशके लिये भयानक नहीं, भयानक है तो केवल हिंदू-राष्ट्रवाद। इस प्रकारका प्रचार जिस देशमें चलता हो, उसमें कौन अपनेको हिंदू कहना चाहेगा? जहाँ प्रजातन्त्रका अर्थ ही अल्पसंख्यकोंका शासन हो, जहाँ राष्ट्रीय एकताका अर्थ ही बहुसंख्यकोंके समस्त संगठनोंपर प्रतिबन्ध लगाना हो, वहाँ कौन अपनेको

बहुसंख्यकोंसे अलग करना नहीं चाहेगा ! यदि धर्मनिरपेक्षिताके यही अर्थ लिये जाते रहे तो शीघ्र ही अपने अस्तित्वकी रक्षाके लिये हिंदूराष्ट्र टुकड़े-टुकड़े होकर बिखर जायगा । हमने अपने बचपनमें देखा है कि आर्यसमाजी अपनेको हिंदू नहीं कहते थे तो आर्यसमाजके मञ्चसे जो वे माँगते थे, उन्हें मिल जाता था । अब वे अपनेको हिंदू कहने लगे तो उनकी कोई सुनवाई नहीं होती । आप सिक्ख होकर जो माँगेंगे, मिलेगा; अछूत बनकर जो माँगेंगे, मिलेगा; जैनी होकर, बौद्ध होकर, आर्यसमाजी होकर, द्रविड़ होकर जो माँगेंगे,सो मिलेगा; परंतु यदि आपने कह दिया हम हिंदू भी हैं तो आपको कुछ नहीं मिलेगा ।

धर्मनिरपेक्षिताका एक बड़ा अभिशाप यह है कि आज शासन और शासितमें किसी प्रकारकी भावात्मक एकता नहीं रही। आज मिलमालिक और मजदूरमें किसी प्रकारकी भावात्मक एकता नहीं है । आज जन-जनमें किसी प्रकारकी भावात्मक एकता नहीं। आज प्रदेश-प्रदेश, भाषा-भाषा, जाति-जाति, वर्ग-वर्ग, धनी-निर्धन, शिक्षित-अशिक्षित, सम्पादक-लेखक, लेखक-प्रकाशक, व्यापारी-ग्राहक, मालिक-मजदूर, उत्पादक-उपभोक्ता—इन किसीमें भी किसी प्रकारकी भावात्मक एकता नहीं है । परिणाम तोड़-फोड़, हड़ताल, लाठी, गोली । भावात्मक एकताके चार आधार हैं—स्वार्थ, रक्त, संस्कृति और धर्म । भारत-जैसे विशाल देशमें रक्त एक नहीं हो सकता । रक्तके आधारपर बने राष्ट्र बहुत छोटे सामान्यतः नगर राज्य होते हैं और संस्कृति तथा धर्मकी ओरसे हम उदासीन हो उठे । परिणामतः सामाजिक सम्पर्कका एकमात्र आधार 'स्वार्थ' केवल स्वार्थ रह गया है । स्वयं राजनयिकों तथा उद्योगपतियोंके लिये यह स्थिति अत्यन्त भयावह है । यदि भारतीय जनताको यहाँके उद्योगपतियोंसे कोई एकात्मता नहीं रही तो उन्हें कम्युनिस्टोंसे बचानेवाला कोई नहीं रहेगा । इन्दिरा देवीकी नाकपर पत्थर मारा गया, चह्वाणकी कारपर पथराव हुआ और देशमें इनके विरुद्ध कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई ।

धर्म ही निर्भीक निर्णयकी शक्ति देता है । किसी भी प्रकारकी धार्मिक आस्था न होनेके कारण कम्युनिस्टों और मुसल्मानोंको छोड़कर हमारे राजनेता कोई भी निर्णय लेनेमें असमर्थ हैं । विभिन्न वर्गोंके मतोंके लोभमें वे परस्पर विरोधी बातें करते, शीघ्रातिशीघ्र निर्णयोंको पलटते एवं द्वयर्थक शब्दावलीका प्रयोग करते हैं । उत्पादकोंका स्वार्थ अधिक-से-अधिक महार्घतामें है । कोई भी नेता कृषकोंके बीच यह नहीं कह सकता कि खाद्यपदार्थोंके मूल्य नीचे आने चाहिये और प्रत्येक नेता, चाहे वह किसी भी दलका क्यों न हो, उल्टे उन्हें भड़काता है । जब वह नेता वेतनभोगियोंके बीच पहुँचता है तो महार्घताका रोना रोता है और उन्हें अधिक-से-अधिक महार्घता-भत्ता दिलानेका प्रयत्न करता है । इस प्रकार इन आस्थाहीन नास्तिक नेताओंके कारण एक आर्थिक कुचक्र चल पड़ा है । कृषि-पदार्थोंके ऊँचे-से-ऊँचे भाव, फलस्वरूप महार्घता, फलस्वरूप अधिक वेतन, फलस्वरूप मुद्रास्फूर्ति, फलस्वरूप अधिक महार्घता-कर लगाये जाते हैं तो नेतृवर्ग आन्दोलन करता है । विदेशोंसे ऋण लिया जाता है तो नेतृवर्ग आन्दोलन करता है । विदेशोंसे सहायता ली जाती है तो नेतृवर्ग आन्दोलन करता है । हमारा आशय यह नहीं कि करोंका लगना, विदेशी ऋण अथवा सहायता लेना बुरा नहीं है; परंतु इस आर्थिक कुचक्रसे कैसे निकला जाय । इसका कोई समाधान किसीके पास नहीं; क्योंकि प्रत्येक राजनैतिक दल कृषक एवं वेतनभोगी, इनमेंसे किसीको भी अप्रसन्न करना नहीं चाहता । ऐसा किसीको विश्वास नहीं कि धर्मानुकूल अपने स्वार्थके विरुद्ध भी लोग उनकी बात सुन सकेंगे; क्योंकि ये स्वयं किसी ऐसी बातको सुनना नहीं चाहते, जो इनके स्वार्थके विरुद्ध हो; फिर वह चाहे कितनी ही धर्म, न्याय और सत्यके निकट हो ।

धर्मनिरपेक्षिता सामरिक, राष्ट्रीय, सांस्कृतिक, नैतिक एवं आर्थिक दिवालियेपनकी ओर हमें ले जा रही है । अब समय आ गया है कि हम इसके विरुद्ध युद्ध छेड़ दें । सर्वोच्च न्यायालयके भू० पू० मुख्य न्यायाधीश श्रीजी०सुब्बारावका कहना है कि संविधानमें कहीं धर्मनिरपेक्ष अथवा सेक्युलर शब्द नहीं आया है । अतः भारतीय राष्ट्रसे धर्मनिरपेक्षिताको तिलाञ्जलि देनेके लिये कहना संविधानमें संशोधनकी माँग नहीं है । यदि धर्मनिरपेक्षिता कोई आदर्श है, तो वह मुस्लिमबहुल, कम्युनिस्टबहुल और ईसाईबहुल राष्ट्रोंपर भी लागू होना चाहिये । उसके लिये केवल एक मात्र हिंदूबहुल राष्ट्र भारतको ही बलिका बकरा क्यों बनाया जाय ? यह कोई तुक नहीं कि मुस्लिमबहुल राष्ट्र तो मुस्लिमधर्मसापेक्ष, कम्युनिस्टबहुल राष्ट्र कम्युनिस्ट-धर्मसापेक्ष और ईसाईबहुल राष्ट्र ईसाईधर्मसापेक्ष रहे । केवल हिंदूबहुल राष्ट्र ही धर्मनिरपेक्ष बना रहे !

अधर्म तथा असत्कर्मका फल दैवी प्रकोप—जन-धनका नाश

वर्तमान कालको उन्नतिका युग कहा जाता है और भौतिक विज्ञानमें नये-नये आश्चर्यजनक आविष्कारोंको देखकर इस दिशामें पर्याप्त उन्नति हुई है, यह कहना है भी सत्य ही; पर साथ ही सर्वत्र जो घोर चारित्रिक पतन हो रहा है और सभी प्रकारके आधिभौतिक, आधिदैविक एवं आध्यात्मिक ताप-दुःख बढ़ रहे हैं, यह भी प्रत्यक्ष है। भोगके साधन बहुत बढ़ रहे हैं; पर उन्हींके साथ-साथ चित्तकी अशान्ति तथा दुःखोंकी भी वृद्धि हो रही है। इसीसे अपराध भी बढ़ रहे हैं और दैवी प्रकोपका भी प्रबल प्रवाह बह चला है। महान् समुन्नत माने जानेवाले आजके प्रगतिशीलोंके आदर्श अमेरिका-यूरोपमें जघन्य अपराधोंकी संख्या द्रुतगतिसे बढ़ रही है; यह अत्यन्त चिन्तनीय है। इसीके साथ-साथ राष्ट्रोंमें, देशोंमें, देशके प्रान्तोंमें, प्रान्तोंके निवासियोंमें, विभिन्न धर्म तथा जातिवालोंमें द्वेष, ईर्ष्या, परस्परके पतनका प्रयास, कलह, युद्ध, युद्धकी तैयारियाँ, नये-नये विध्वंसक शस्त्रास्त्रोंका निर्माण, मार-काट, हिंसा-हत्या, लूट-खसोट, छल-कपट, धोखा-विश्वासघात आदिका विपुल प्रयास और त्रास बढ़ रहा है; साथ ही जगह-जगह भूकम्प, भूस्खलन, अतिवर्षा, अवर्षा, दुर्भिक्ष, नये-नये रोग, वज्रपात, अग्नि-प्रकोप और भाँति-भाँतिकी दुर्घटनाएँ आदि दैवी प्रकोप बढ़ रहे हैं; मानव-जातिका जन-जन आज संत्रस्त, भयभीत, पीड़ित और दुखी है; पर विमोहवश वह भी अपनेको उन्नतिके युगका मनुष्य मान रहा है। बेचारे पशु-पक्षियोंकी तो बुरी दशा है। स्वार्थी तथा हिंसक-हृदय मनुष्यने नीच स्वार्थवश इन मूक प्राणियोंपर जो दुःखों-कष्टोंके पहाड़ ढहाये हैं, इनपर मृत्युका जो भयानक तथा क्रूर चक्र चलाया है, वह तो यथार्थमें मानवके हृदयको कँपा देनेवाला है। ये सब पीड़ा, दुःख, विनाश, विध्वंस उत्तरोत्तर बढ़ रहे हैं, पर हम दुःख-पीड़ासे कराहते हुए भी इनका कारण नहीं खोजते और वही काम करते जाते हैं, जिनसे ये सब घटनेके स्थानपर बढ़ते ही जा रहे हैं!

हमारे शास्त्रोंमें इन विपत्तियों और बुराइयोंका कारण बतलाया है—एकमात्र 'अधर्म'को और 'असत्कर्म'को—जिसका राष्ट्रके, देशके, प्रान्तके, जातिके, समाजके अधिकारी, नेता, प्रधान पुरुष सेवन करते हैं और उनकी देखादेखी जो सारी जनतामें फैल जाता है। महाभारत आदिमें इसका स्थान-स्थानपर उल्लेख है। हमारे आयुर्वेदके प्रसिद्ध ग्रन्थ चरकसंहिताके 'विमान-स्थानम्'के तीसरे अध्यायका नाम है—

'जनपदोद्ध्वंसनीयं विमानम्।'

इसमें जनपदका ध्वंस करनेवाले कौन-कौनसे उत्पात होते हैं, उनका मूल कारण क्या है और उनके दूर करनेके क्या उपाय हैं? इसपर प्रकाश डाला गया है।

वहाँ बतलाया गया है—

जब मनुष्य प्रज्ञापराधी हो जाते हैं, उनकी बुद्धि दूषित हो जाती है, तब वे अधर्म तथा असत्कर्म करते हैं और देश, नगर, निगम (प्रान्त) तथा जनपदोंके प्रधान पुरुष (राजा, अध्यक्ष, शासक, नेता आदि) अधिकारीगण धर्मका उल्लङ्घन करके प्रजाके साथ अधर्मका व्यवहार करते हैं, तब उनके आश्रित तथा उपाश्रित पुरों (नगरों) के तथा जनपदों (गाँवों) के लोगोंमें तथा व्यापार-वाणिज्यके द्वारा आजीविका करनेवाले व्यापारी लोगोंमें भी अधर्म बढ़ जाता है। उससे धर्मका लोप हो जाता है। धर्मरहित जनोंकी देवतालोग (अग्नि, वायु, इन्द्र, वरुण, सूर्य, चन्द्र आदि) देख-रेख करना

छोड़ देते हैं, जिससे ऋतुएँ विकृत हो जाती हैं। मेघ ठीक जल नहीं बरसाते। कहीं अतिवर्षा, कहीं सूखा, कहीं विकारयुक्त वर्षा होती है। स्वास्थ्य तथा जीवनप्रद वायु ठीक नहीं बहती। भूमि दूषित हो जाती है। लोगोंमें सत्य, शील, लज्जा, आचार, धर्म नष्ट हो जाते हैं। जगह-जगह भूकम्प, वज्रपात आदि होते हैं। नदी-तालाब आदि विक्षुब्ध होकर उछलते हैं, तो कहीं सूखने लगते हैं। चोर-डाकुओंकी भरमार हो जाती है। चारों ओर पीड़ितों तथा विपत्तिग्रस्तोंकी करुण-ध्वनि सुनायी देती है और अकालमृत्युकी संख्या बढ़ जाती है। अधर्मके ही कारण शस्त्रोंके द्वारा युद्ध करनेवाले देश एक-दूसरे देशपर चढ़ाई करके युद्ध छेड़ देते हैं। लोगोंमें लोभ, रोष, मोह और मान बढ़ जाते हैं। वे दुर्बलोंको कुचलकर स्वजनोंका तथा पर-जनोंका नाश करनेके लिये परस्पर आक्रमण करते हैं।

अधर्मके ही कारण मनुष्य अभिमानमें भरकर और मदमत्त होकर गुरुजनोंका, वृद्धोंका, सिद्ध-महात्माओंका, ऋषियोंका तथा पूज्य पुरुषोंका अपमान करके—उनके साथ दुर्व्यवहार करके उनसे अभिशप्त होकर (शाप प्राप्त करके) दुखी तथा भस्म हो जाते हैं। इन सबमें 'अधर्म' ही कारण है। जबतक अधर्मका आश्रय रहेगा, जबतक भोग-सुखके लिये मनुष्य भयानक दुःखरूप भविष्यको भूलकर काम, क्रोध, लोभ, मान, द्वेष, द्रोह आदिका आश्रय करके अधर्म तथा असत्कर्म करता रहेगा, तबतक इन विपत्तियोंसे छुटकारा- मिलना तो सम्भव है ही नहीं। इनका उत्तरोत्तर विस्तार होगा। आजके जगत्‌में वही हो रहा है।

इन विपत्तियों-बुराइयोंसे—जन-पद-ध्वंसकारी इन उत्पातों-उपद्रवों तथा दैवी प्रकोपोंसे बचनेके उपाय क्या हैं? ऋषि कहते हैं—

सत्यं भूते दया दानं बलयो देवतार्चनम्।
सद्वृत्तस्यानुवृत्तिश्च प्रशमो गुप्तिरात्मनः॥
हितं जनपदानां च शिवानामुपसेवनम्।
सेवनं ब्रह्मचर्यस्य तथैव ब्रह्मचारिणाम्॥
संकथा धर्मशास्त्राणां महर्षीणां जितात्मनाम्।
धार्मिकैः सात्त्विकैर्नित्यं सहास्या वृद्धसम्मतैः॥
इत्येतद्भेषजं प्रोक्तमायुषः परिपालनम्॥
(चरकसंहिता, विमानस्थानम् ३। १९-२२)

इसका विशद भावार्थ है—

'वाणी तथा आचरणमें 'सत्य'का सेवन; 'प्राणिमात्रपर दया' (मनसे, वचनसे, शरीरसे किसी भी प्राणीको कभी न सताना, न किसीका अहित करना वरं उनके दुःखोंको दूर करनेका सहज प्रयास) करना; बदला न चाहते हुए, आदरपूर्वक, भगवान्‌की वस्तु भगवान्‌के समर्पित हो रही है—ऐसा मानकर, अपने पास जो वस्तु हो उसका, बिना अभिमानके जहाँ, जब जिसको जरूरत हो (देश, काल, पात्र देखकर) 'दान करना;' 'बलि' (पराया दुःख दूर करनेके तथा पर-सुख-सम्पादनके लिये अपने सुखको बलि दे देना—उसका त्याग करना, अथवा देवता, ऋषि, पितृगण, मानव तथा इतर प्राणी—सबको हिस्सा देकर बचा हुआ अन्न खाना—बलिवैश्वदेवका नित्य अनुष्ठान करना); 'देवताओंका यथायोग्य यथाविधि श्रद्धाभक्तिपूर्वक पूजन करना'; 'सद्वृत्तका—सदाचार, शिष्टाचारका (व्यवहार-बर्तावमें विनय, नम्रता, सेवाभाव, सद्भावका) पालन करना'; 'प्रशम'—भोग-विलास, ऐश-आराम, इन्द्रियभोग-सुख, मान-सम्मान आदि विषयोंसे अपनेको बचाना; रोग, दुर्व्यवहार, असदाचार, असत्संग, निन्दा आदि बाहरी तथा काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष, वैर, असूया, परदोष-दर्शन आदि भीतरी दोषोंसे तथा हिंसक प्राणियोंसे 'अपनी रक्षा' करना; रोगरहित स्वास्थ्यवर्धक 'कल्याणमय स्थानों तथा पदार्थोंका सेवन करना'; 'ब्रह्मचर्यका (शास्त्रोक्त-विधिके अनुसार अष्ट प्रकारके मैथुनका त्याग) पालन करना', ब्रह्मप्राप्तिके साधनोंमें लगे रहना; 'ब्रह्मचारियोंकी सेवा'—उनका संग करना (भोगियोंका नहीं); 'धर्मशास्त्रोंका सेवन'—श्रवण, मन-इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त किये हुए 'महर्षियोंका सत्संग' करना,

उनके साथ वार्तालाप करना; और 'वृद्ध पुरुषोंके द्वारा सम्मानित—उनके माने हुए धार्मिक तथा सात्त्विक पुरुषोंके पास उठना-बैठना'—ये आयुकी रक्षा करनेवाली (जनपदोंकी उत्पातोंसे रक्षा करनेवाली) औषध हैं—'

आज जो हमारे भारतमें भी चारों ओर भौतिक, दैविक तथा आध्यात्मिक उपद्रव हो रहे हैं, इसका कारण उपर्युक्त 'अधर्म और असत्कर्मका आचरण' ही है। बाढ़, भूकम्प और महामारी आदिसे जो एक साथ बहुत-से मनुष्योंकी मृत्यु और उनकी धनसम्पत्तिका नाश होता है, यह भी सामूहिक—बहुतसे लोगोंका साथ मिलकर अधर्मके आचरण करनेका ही फल है। जैसे बहुत लोगोंका मिलकर कहीं आग लगाना, हिंसा-हत्या करना या लोगोंकी धन-सम्पत्तिको लूटना या नाश करना। ऐसे ही सामूहिक अपराधोंके फलस्वरूप प्रबल कर्म होनेपर इसी जन्ममें नवीन प्रारब्धके निर्माणद्वारा, अथवा जन्मान्तरमें समूह-रूपसे मृत्यु तथा धन-सम्पत्तिकी हानि होती है।

अतः सभीको व्यक्तिगत तथा सामूहिक रूपसे भी अधर्म तथा असत्कर्मका सर्वथा त्याग करके सावधानी एवं उत्साहके साथ धर्म तथा सत्कर्मका ही सेवन करना चाहिये।

सूखा तथा अतिवर्षासे पीड़ित प्राणियोंकी सहायता परम कर्तव्य

इस वर्ष देशमें कलह, विग्रह, द्वेष, द्रोह, दलबंदी, राजनीतिक उपद्रव, विद्यार्थियोंकी अनुशासनहीनता और हड़ताल आदि तो कहीं-न-कहीं क्षुद्र-विशाल रूपमें हो ही रहे हैं। पर साथ ही विपरीत वर्षा, अतिवर्षा, सूखा आदिके कारण मनुष्यों तथा गौ आदि पशुओंका कष्ट भी बहुत ही बढ़ रहा है। बिहार, आसाम, उड़ीसा, दक्षिणके कई स्थान तथा गुजरात आदिमें तो अवर्षा तथा अतिवर्षाके कारण भयानक कष्ट था ही। इधर उत्तरप्रदेश, बिहार आदिमें तथा राजस्थान एवं पश्चिम बंगालमें तो विशेषरूपसे अवर्षा तथा अतिवर्षासे भयानक प्रलयकाण्ड-सा हो गया है। राजस्थानमें अच्छी नस्लकी लाखों गौएँ घास-चारा तथा जलके अभावमें कराल कालका ग्रास बनने जा रही हैं और मनुष्योंकी भी बड़ी संख्या अकालपीड़ित है। बेचारे छोटे पशु-पक्षियोंकी बात तो पूछता ही कौन है? इसी प्रकार बंगालमें लाखों मनुष्य पीड़ित हैं। गाँव-के-गाँव बह गये हैं। हजारों-हजारों मनुष्य अकस्मात् मृत्युके मुहँमें चले गये हैं। पशु कितने बहे-मरे हैं, इसका तो हिसाब ही नहीं है।

देशके मानव तथा गौ आदि पशुओंकी रक्षाके लिये सरकारोंने तथा देशके दयालु पुरुषोंने बहुत कुछ किया है और कर रहे हैं; वे सभी प्रशंसाके पात्र हैं और उन सबका मैं अभिनन्दन करता हूँ। परंतु जितना और जैसा काम होना चाहिये, वैसा अभी नहीं हो रहा है। यह अवश्य दुःखकी बात है। सुना है—बिहारमें तथा बंगालमें गतवर्ष ईसाई सज्जनोंने बड़ी सेवा की, इस वर्ष भी करते हैं। सुना है—रेड क्रासवाले बंगालमें बड़ी सहायताका आयोजन कर रहे हैं। यह सभी स्तुत्य है। ईसाई सज्जन धर्म-परिवर्तनका प्रयास छोड़ दें तो उनकी सेवा आदर्श है। हमारी सरकारोंको विशेषरूपसे तथा सभी देशवासियोंको अपनी शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार यथासाध्य मनसे, तनसे और धनसे, केवल सेवाके भावको लेकर ही पूरी सेवा करनी चाहिये, किसी भी राजनीतिक या अन्य दलगत या व्यक्तिगत उद्देश्यको लेकर नहीं। और न इस उद्देश्यसे किसीकी निन्दा-स्तुति करनेमें ही अपने कर्तव्यकी इतिश्री समझकर दूषित कर्म करना चाहिये। जिससे जैसे जो बने, विशुद्ध सेवा करनी चाहिये।

बंगालमें सेवाका आयोजन हो रहा है। सरकार भी बड़ी धनराशि देना चाहती है। व्यापारीवर्ग तथा अन्य सज्जन भी प्रयास कर रहे हैं। राजस्थानमें भी सेवाका कार्य आरम्भ हो गया है। राजस्थान-सरकारने सेवा-केन्द्रोंको आधा खर्च देनेकी घोषणा की है। राजस्थान रिलीफ सोसायटी, राजस्थान गो-सेवासंघ, मारवाड़ी-सम्मेलन, मारवाड़ी रिलीफ सोसायटी, सेन्ट्रल रिलीफ फण्ड, अकाल-सहायक-समिति बीकानेर, भारत-गो-सेवक समाज तथा गोरक्षा-महाभियान-समिति आदि संस्थाएँ अकालपीड़ित गोवंशकी रक्षाके लिये प्रयत्नशील हैं। श्रीराधाकृष्णजी बजाज विशेष प्रयत्न कर ही रहे हैं, उनकी तो लगन है ही। श्रीगजाधरजी सोमानी भी बहुत काम कर रहे हैं। वे कलकत्ता भी गये थे। उन्होंने लिखा है कि केन्द्रीय सरकारने गो संवर्धन-परिषद्के द्वारा पाँच लाख सहायता देना स्वीकार किया है। कलकत्तेकी मारवाड़ी रिलीफ सोसायटीने प्रतिमास एक लाख रुपये सहायतार्थ खर्च करनेकी जिम्मेदारी ली है। कलकत्तेके गोभक्त सज्जन इस कार्यके लिये पर्याप्त दान दे रहे हैं। बम्बईमें निश्चय हुआ है कि राजस्थान रिलीफ सोसायटीके तत्वावधानमें राजस्थान दुर्भिक्ष-सहायतामें दिलचस्पी लेनेवाली सभी संस्थाएँ कार्य करेंगी। श्रीगजाधरजीने धन तथा सुयोग्य कार्यकर्ताओंके लिये अपील की है। पिछले दिनों राजस्थानके मुख्य मन्त्री श्रीसुखाड़ियाजी बम्बई पधारे थे। उन्होंने इस कार्यके लिये ५० लाख रुपयेकी धनराशिके लिये अपील की है। आशा है, सहृदय सज्जन मुक्तहस्तसे दान देंगे और सेवा करनेवाले उत्साही कार्यकर्ता तनके द्वारा पूरी सेवा करनेका पुण्य लूटेंगे। चारा-भूसाके लिये भी अपील की गयी है। श्रीगजाधरजी सोमानीका पता है—श्रीनिवास हाउस, वाडवी रोड, फोर्ट, बम्बई।

इधर, गीताप्रेसकी ओरसे भी गीताप्रेस सेवादलके बीकानेरके उत्साही कार्यकर्ताओंके द्वारा बीकानेर तथा कोलायतजीमें भूखी गौओंको यत्किंचित् चारा-दाना देनेका कार्य चल रहा है। उसमें भी पर्याप्त व्यय हुआ है और हो रहा है। इस सम्बन्धमें किन्हींको कुछ पूछना हो तो वे गीताप्रेस-सेवादल, गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस, गोरखपुरको पत्र लिखकर पूछ सकते हैं।

कुछ सज्जनोंने इस अवसरपर इस प्रकारके उद्गार प्रकट किये हैं कि 'गो-वध-निरोध आन्दोलनके समय इतना प्रयास करनेवाले लोग इस समय गोवंशके बचानेके लिये काम क्यों नहीं कर रहे हैं।' उनके इन वक्तव्योंसे कार्यकर्ताओंको उत्साह ही मिला है, इसलिये वे धन्यवादके पात्र हैं। पर उन्हें यह जानना चाहिये कि जगद्गुरु शंकराचार्यजी गोवर्धनपीठाधीश स्वामीजी श्रीनिरञ्जनतीर्थजी महाराजने व्यावरसे ही इसके लिये लिखा-पढ़ी आरम्भ कर दी थी। उन्होंने ग्यारह सौ रुपये दिये हैं। वे स्वयं राजस्थान जा रहे हैं। श्रीराधाकृष्णजी बजाज, श्रीगजाधरजी सोमानी, गो-वंशकी रक्षाके लिये प्रयास करनेवाले, दान देनेवाले अधिकांश सज्जन, 'गीताप्रेस सेवादल'के कार्य-कर्ता, 'भारत गो-सेवक-समाज'के लोग, श्रीमानकरजी, गोरक्षा-अभियान-समितिके श्रीप्रेमचन्दजी आदि वही हैं जो उस समयके गोवध-बंदीके आन्दोलनमें सम्मिलित थे तथा जो अब भी गोवध-निषेध तथा गोपालन-गोरक्षणके कार्यमें यथाशक्ति प्रयत्नशील हैं। फिर यह कैसे कहा जा सकता है कि गोवध-बंदीका आन्दोलन करनेवाले लोग इस समय कुछ कर नहीं रहे हैं। हाँ, यह अवश्य है कि वे जो कुछ कर रहे हैं उससे उनको संतोष नहीं है। वे इससे बहुत अधिक काम करना चाहते हैं। रही साधुओंकी बात, सो बहुत-से साधु इसमें लगे हैं। 'गीताप्रेस सेवादल'के सेवाकार्यमें स्वामीजी श्रीरामसुखदासजी महाराजके साथी कई साधु सेवा कर रहे हैं। स्वामीजी श्रीगवानन्द हरिजी पंजाबमें चारा-भूसा एकत्र करके भिजवा रहे हैं। और भी बहुत-से साधु महात्मा इस सेवाकार्यमें लगना चाहते हैं। इनके

सिवा अन्यत्र भी साधु-संत कार्य कर रहे हैं। हाँ, कार्य अभी बहुत ही कम हुआ है। इस कमीको यथासाध्य पूर्ण करना चाहिये और सभीको उत्साहके साथ दैवी प्रकोपसे पीड़ित प्राणियोंकी सहायता-सेवाको परम कर्तव्य मानकर तन-धन-मनसे इस परम आवश्यक महान् पवित्र कार्यमें सहयोग देना चाहिये।

और यह पवित्र कार्य करना चाहिये––भगवान्‌की सेवा मानकर, भगवान्‌की ही प्रेरणासे, भगवान्‌की दी हुई सम्पत्ति-शक्तिके द्वारा निरभिमान होकर––अत्यन्त विनम्र भावसे। ख्याति-प्रतिष्ठा या अन्य किसी भी लौकिक-पारलौकिक लाभकी इच्छा नहीं रखनी चाहिये।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

त्यागका मूल्य

[एक सत्य घटना]

श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्दका एक पावन नाम 'गोविन्द' है, जिसका अर्थ है—गो-जातिका इन्द्र। यह नाम अथवा उपाधि इनको व्रजवासी गो-संततिके जीवनकी गोवर्धन धारण करके रक्षा करनेके उपलक्ष्यमें देव-गोमाता कामधेनुने अपने पवित्र दुग्ध तथा आकाश-गङ्गाके जलसे अभिषेक करके दी थी। गोविन्दकुण्ड इस दिव्य लीलाका स्मारक है।

श्रीव्रजचन्द्रको समस्त धरणीमण्डलमें व्रजभूमि प्रिय है, किंतु जिन स्थानोंपर उन्होंने महत्त्वपूर्ण लीलाएँ की थीं, उन स्थानोंसे विशेष सम्बन्ध होना कोई विलक्षण बात नहीं। यही कारण है कि प्राचीन समयसे ये स्थल बड़े-बड़े महात्माओंकी साधन-भूमि रहे हैं। महाप्रभु श्रीचैतन्यदेवके संन्यासदीक्षागुरु श्रीकेशव भारतीको ग्वालबालकके रूपमें प्रकट होकर आपने दूध पिलाया। आचार्य श्रीवल्लभाचार्यजीके उपास्यदेव श्रीगोपालजीका भी यहीं स्थान क्रीड़ास्थल रहा है। उनका मन्दिर समीप ही गिरिराजके ऊपर स्थित था। अब वही श्रीविग्रह नाथद्वारामें विराजमान है। आधुनिक समयमें भी व्रज-विख्यात सिद्ध महात्मा बाबा मनोहरदासजीकी भजनकुटी तथा आश्रम यहाँ है। सिद्ध महात्माकी उपाधि उन्हींको मिलती है, जिनको प्रभु साक्षात् दर्शन देते हैं। इस पावन दिव्य स्थलकी महिमा भक्तरसिक प्रीतमजीने इस पदमें गायी है।

तरैटी गोवर्धनकी रहिये।
नित प्रति मदनगुपाल लालके चरनकमल चित लैये॥
तन पुलकित ब्रजरजमें लोटत गोविंद कुंडमें न्हैये।
रसिक प्रीतम हित चित्तकी बातें श्रीगिरधारीजी सों कहिये॥

इस दिव्य पावन स्थलने लगभग पचास वर्ष पूर्व एक रमते राम महात्माको ऐसा आकृष्ट किया कि वे प्रातःकाल कहींसे आकर कुण्डके किनारे एक कदम्ब वृक्षके नीचे जो बैठे, सो बैठे ही रहे। उनका सुन्दर गौर वर्ण, लम्बा शरीर, दिव्य तेजयुक्त मुखारविन्द सहसा स्नानार्थियोंको आकृष्ट करता था, किंतु अपरिचित होनेसे किसीकी साहस उनसे बात करनेका नहीं हुआ। प्रातःसे मध्याह्न और मध्याह्नसे संध्या हो गयी, महात्माने आसन नहीं छोड़ा। समीपके ग्राम आन्यौरमें उनके कुण्डपर आनेकी बात फैल गयी। यह चर्चा भी होने लगी कि एक महात्मा हमारे गोविन्दकुण्डपर पधारे हैं और वे दिनभर बिना अन्न-जलके रहे हैं। यह ग्रामभरके लिये बड़े दुर्भाग्यकी बात है। गाँवके दो-तीन प्रतिष्ठित सज्जन महात्माजीके समीप गये और सविनय प्रणाम करके बैठ गये। जब महात्माजीने उनकी ओर दृष्टिपात किया और उनके आनेका कारण पूछा तो उन्होंने कहा—'महाराजजी! हमारे कुण्डपर आकर आप भूखे रहें, यह हमारा दुर्भाग्य है। अब आप कृपा

करके हमें आज्ञा दें तो हम रोटी अथवा दूध ले आयें।' महात्माजीने कहा कि 'सूर्यास्तके पश्चात् हम कुछ भी ग्रहण नहीं करते।' तब गाँववालोंने कहा 'अच्छा, महाराजजी! आज्ञा दें कल प्रातःके लिये क्या प्रबन्ध किया जाय।' महात्माजी बोले कि 'कोई भक्त ब्राह्मण हो तो मैं दिनमें एक बार उसके घरका भोजन कर सकता हूँ।'

महात्माजीकी बात सुनकर वे चुप हो गये; क्योंकि इनके ग्राममें ब्राह्मण तो थे, किंतु वे भक्त नहीं कहे जा सकते थे। महात्माजीसे यह कहकर कि 'कुछ-न-कुछ व्यवस्था करेंगे'—ये लोग वापस आ गये। उस समय गोविन्दकुण्डके दक्षिणमें पूँछरी गाँवमें एक पण्डितजी रहते थे जो समृद्ध व्यक्ति और प्रसिद्ध भक्त थे। गाँववालोंने उसी रात यह समाचार पण्डितजीके पास भेज दिया।

भक्तका हृदय तो नवनीतसे भी अधिक कोमल होता है। पण्डितजीको महात्माजीके दिनभर निराहार रहनेकी सूचनासे बड़ा दुःख हुआ। वे उसी समय भोजन ले जाते, किंतु महात्माजी रात्रिको कुछ लेते नहीं, यह जान वे मन मसोसकर रह गये। दूसरे दिन ठाकुरजीको जब भोग लग चुका तो भोजन लेकर पण्डितजी श्रीमहात्माजीकी सेवामें पहुँचे और बड़ी विनयसे नमस्कार करके बोले—'महाराजजी! यह श्रीठाकुरजीका भोग-प्रसाद है इसे ग्रहण करना ही होता है।' महात्माजीने पण्डितजीकी ओर पैनी दृष्टिसे देखा और समझ गये कि वे श्रद्धालु भक्त हैं। उन्होंने प्रसाद ग्रहण कर लिया। पण्डितजीके प्रार्थना करनेपर कि वे प्रतिदिन उसी समय प्रसाद भेज दिया करेंगे, महात्माजीने स्वीकृति दे दी।

इस देशकी प्रथाके अनुसार जो भोजन चौकेके बाहर भेजा जायगा, वह पक्का अर्थात् पूरी-परौंठा आदि ही होगा। महात्माजीको नित्यप्रति पूँछरीसे परौंठे आने लगे।

उन्हीं दिनों एक महात्मा कृष्णदास नामसे गोविन्दकुण्डके समीप एक आश्रममें रहते थे। व्रजमें कोई भजनानन्दी महात्मा भूखा नहीं रहता। व्रजवासी लोग बड़ी प्रसन्नतासे भिक्षा देते हैं। चूँकि भिक्षार्थी कई होते हैं और कोई भी सद्गृहस्थ बाबाजीको अपने घरसे बिना भिक्षाके जाने देना अपना दुर्भाग्य समझता है। इसलिये प्रायः रोटीका टुकड़ा ही दिया जाता है। श्रीकृष्णदासजीको दुपहरके समय आन्यौर गाँवमें भिक्षाके लिये जाना पड़ता। भिक्षामें कहीं ज्वारके तो कहीं बेझड़के टिक्करका टुकड़ा मिलता और साग-दाल सभी गृहोंसे नहीं मिलते। उन टुकड़ोंको जैसे-तैसे गलेसे नीचे उतारना पड़ता।

एक दिनकी बात है, कृष्णदासको बहुत भटकनेपर भी उदरपूर्तिके लिये पर्याप्त भिक्षा नहीं मिली और इन्होंने नवागत महात्माके लिये अच्छे साग तथा दहीके साथ चार परौंठे आये देखे तो इनके हृदयमें यह विचार उठा कि 'जैसे साधु ये, वैसा ही साधु मैं। मुझे तो बेझड़के टिक्कड़के टुकड़े भी नहीं मिले और इनको आरामसे बैठे-बैठाये गेहूँके परौंठे मिल रहे हैं। उस समय इन्होंने 'अपने-अपने भाग्य हैं'—ऐसा समझकर मनको शान्त कर लिया। किंतु डाहका अङ्कुर भीतर-ही-भीतर पल्लवित होने लगा। इन्होंने सोचा कि 'साधुको रूखा-सूखा अन्न जैसा भिक्षामें मिले वही ग्रहण करनेका विधान है; क्योंकि ऐसे अन्नसे इन्द्रियाँ वशमें रह सकती हैं। बढ़िया भोजनसे तो इन्द्रियोंको बल मिलेगा, इससे वे वशमें नहीं रहेंगी। इसलिये नवागत महात्माके पतनकी बड़ी सम्भावना है।'

महात्माजीको इस दिव्य स्थलमें रहते जब कुछ समय बीत गया तो पास-पड़ोसके लोग सायंकाल इनके पास आध्यात्मिक चर्चाके लिये जुटने लगे। इनके उपदेशोंमें गम्भीर शास्त्रज्ञान तथा उत्कृष्ट साधनका परिचय मिलता था जिससे आकृष्ट होकर गाँवकी बड़ी-

बूढ़ी स्त्रियाँ तथा उनके साथ युवती कन्या तथा बहुएँ भी आने लगीं। यह सत्संग केवल संध्याके एक घंटा पहले आरम्भ होता और दियाबत्तीसे पहले ही समाप्त हो जाता और होता कदम्बके पेड़के नीचे ही।

कृष्णदास बाबाके मनमें जो इन महात्मासे डाह थी, वह बढ़ते-बढ़ते द्वेषके रूपमें बदल गयी। इन्होंने पहले तो यह प्रचार करना आरम्भ किया कि 'साधुको परौंठे तथा दूध नहीं खाना चाहिये और ये महात्मा खाते हैं। इसलिये इनकी इन्द्रियाँ वशमें नहीं रह सकतीं।' फिर यह कहने लगे कि 'साधुको तो स्त्रीकी मूर्ति भी नहीं देखनी चाहिये और इनके पास युवती स्त्रियाँ आती हैं, जो पतनका कारण है।' इस प्रकार इन महात्माकी निन्दा करनेमें, इन्हें रस आने लगा और भगवद्-चर्चा तथा भजनकी ओर रुचि कम हो गयी।

एक दिन कृष्णदासजी अपनी कुटियामें बैठे थे कि इनके आश्रममें एक वृद्ध ब्राह्मणदेवताका आगमन हुआ। गौर वर्ण, लंबा शरीर, दूध-सी सफेद लंबी दाढ़ी। श्रीठाकुरजीके आश्रमके मन्दिरमें दर्शन करके वे श्रीकृष्णदासजीके समीप आ बैठे और कहने लगे 'कहो बाबा! तुम्हारे कुण्डके साधु-महात्माओंका क्या हाल है। सुना है यहाँ एक बहुत अच्छे महात्माजी आ गये हैं। वे कहाँ रहते हैं?'

कृष्णदास बोले—'महाराज! ऐसे ढोंगी महात्माओं-की हमारे देशमें कमी नहीं। मूर्ख जनताको ठगते हैं। दूध-मलाई खाते हैं और गुप्तरूपसे व्यभिचार करते हैं।' ब्राह्मणदेवताने पूछा कि 'क्या आप यह सत्य कह रहे हैं?' कृष्णदास बोले—'मुझे झूठ बोलनेसे क्या लाभ?'

ब्राह्मण महाराज बोले कि 'क्या आप जानते हैं कि ये कहाँके रहनेवाले हैं और अपने पूर्व-आश्रममें क्या काम करते थे?' कृष्णदास बोले 'नहीं।' ब्राह्मणने कहा 'मैं इनको भलीभाँति जानता हूँ। ये अवधप्रान्तके एक बड़े ताल्लुकदार थे। इनकी राजा उपाधि थी। प्रतिदिन इनके साथ पचासों गण्यमान्य लोग उत्तम-से-उत्तम प्रसिद्ध रसोइयोंद्वारा बनायी गयी भोजनसामग्रीका प्रयोग करते थे। जो इतने बड़े वैभवको ठुकराकर प्रभुके रास्तेमें चल पड़ा, क्या वह साधारण साग-परौंठे खानेसे पतित हो सकता है? तुम्हारे ये विचार तो तुम्हारे कलुषित मनकी ही उपज है। इनमें सत्यका लेश भी नहीं। वे वास्तवमें बहुत बड़े त्यागी हैं।'

ब्राह्मणदेवताने एक चाँटा बाबाजीके जड़ दिया और कहा कि 'तुम्हारा कितना त्याग है, यह भी मुझे ज्ञात है। बसेनी ग्राममें जब तुम रहते थे तब दो-दो दिन बिना अन्नके ही निकल जाते थे। यहाँ तुम्हें प्रतिदिन भोजन मिलता है। यह तुम्हारे भजनका प्रताप है। महात्माओंकी निन्दासे तुम स्वयं पतनके गड्ढेमें गिरने जा रहे हो। चेत जाओ।'

इतना कहकर ब्राह्मणदेवता कुटियाके बाहर चले गये। अब कृष्णदासने विचार किया कि 'ऐसा कौन व्यक्ति हो सकता है, जिसको मेरे तथा इन महात्माके पूर्व आश्रमके सभी वृत्तान्त ज्ञात हों। हो-न-हो, ये तो वही मेरे प्रभु श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द हैं, जिन्होंने मुझ पापगर्तमें गिरते हुएको आकर बचा लिया। यही उनकी भक्तवत्सलता है।'

कृष्णदास अपनी दुष्टतापर दुखी होकर खूब रोये और फिर वे सायं महात्माजीके चरणोंमें गिरकर रोये और अपनी दुष्टताके लिये क्षमा माँगी। इस सम्बन्धमें जब उसने महात्माजीके महान् त्यागकी बात कही तो महात्माजी नीचा सिर करके बैठ गये और किसीसे कुछ बोले नहीं। प्रातःकाल लोगोंने देखा कि 'कदम्बवाले महात्मा वहाँ नहीं हैं।'

—निरञ्जनदास धीर

बिन्दु, नाद तथा कला-तत्त्व

(लेखक—श्रीमनमोहनप्रसादजी)

बिन्दुनादकलातीतस्तस्मै श्रीगुरवे नमः ।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

(गुरुगीता ४१ । ३७)

'श्रीगुरुदेवको नमस्कार है, जो परब्रह्म परमात्मा-स्वरूप हैं एवं जो बिन्दु, नाद तथा कला-तत्त्वके अतीत हैं ।'

आगमके आधारपर शिवपुराणमें कहा गया है—

नमो निष्कलरूपाय नमो निष्कलतेजसे ।
नमः सकलनाथाय नमस्ते सकलात्मने ॥
सकलाकलरूपाय शम्भवे गुरवे नमः ॥

अर्थात् परम शिवस्वरूप श्रीगुरुदेवके निष्कल रूपको तथा उनके निष्कल तेजको एवं उनके सकल ब्रह्मस्वरूपको नमस्कार है । इस प्रकार परम शिवस्वरूप श्रीगुरुदेवकी सकल और अकल या निष्कल दो अवस्थाएँ हैं । निष्कलका अर्थ है—कलातीत (तत्त्वातीत या निर्गुण) और सकलका अर्थ है—कलासे युक्त (या सगुण) । कला कहते हैं—शक्तिके सामान्य एवं परात्पर रूपको । परंतु उसका अधिक प्रचलित अर्थ है—शक्तिका अन्यतम विशिष्टस्वरूप और व्यापार । शिव निष्कल हैं । उनमें कला (अंश) नहीं है । शक्ति कलासे युक्त है । सूर्यकी किरण जिस प्रकार एक केन्द्रसे बहिर्गत होकर अनन्त प्रकारके विश्वको प्रकाशित करती है, उसी प्रकार ब्रह्मकी चित्-शक्ति ब्रह्मस्वरूप केन्द्रसे बहिर्गत होकर अनन्त रूप धारण करके विश्वब्रह्माण्ड प्रसव करती है । परमात्मशक्ति ही ब्रह्मका ब्रह्मत्व है; क्योंकि शक्तिको छोड़ देनेसे ब्रह्मका ब्रह्मत्व सम्पादन नहीं होता । उसी प्रकार ब्रह्मके बिना केवल शक्तिका भी अस्तित्व सिद्ध हो नहीं सकता । वे परस्पर परस्परके सापेक्ष हैं । ब्रह्म निर्गुण और निराकार हैं, उनकी ब्रह्मत्व शक्ति भी निर्गुण-निराकार है । चिद्रूपिणी शक्ति जब ब्रह्ममें लीन होकर ब्रह्ममयी हो जाती है, तब ब्रह्म निष्कल (तत्त्वातीत या निर्गुण) हो जाता है और फिर जब ब्रह्ममयी शक्ति चैतन्यरूपिणी होती है, तब ब्रह्म सकल हो जाता है । ब्रह्मके ये द्विविध स्वरूप नित्य हैं । आगम कहता है—

निर्गुणः सगुणश्चेति शिवो ज्ञेयः सनातनः ।
निर्गुणः प्रकृतेरन्यः सगुणः सकलः स्मृतः ॥

(शारदातिलक १ । ६)

अर्थात् 'ज्ञेयस्वरूप सनातन शिव निर्गुण और सगुण दोनों हैं । निर्गुण प्रकृतिसे भिन्न है तथा सगुण कलासे युक्त है ।' पुनः श्रुति भी कहती है—

निर्गुणः सगुणश्चेति परमात्मा सनातनः ।
तयोर्भेदो न कर्त्तव्यो यदीच्छेदात्मना सुखम् ॥

अर्थात् 'सनातन परमात्मा निर्गुण एवं वही सगुण भी हैं । जो लोग आत्मज्ञानके परमानन्द-लाभकी इच्छा करते हैं, उन लोगोंको निर्गुण एवं सगुणके भेदकी विवेचना करना उचित नहीं है ।' निराकारमें निराकारास्वरूपिणी तथा साकारमें परा प्रकृतिस्वरूपा है । दोनोंके मध्य जो एक पक्षका अवलम्बन करते हैं, उन लोगोंकी मुक्ति नहीं होती । यथा श्रुतिः—

निराकारे निराकारा साकारे प्रकृतिः परा ।
तयोरेकतरेणैव मुक्तिं यास्यन्ति मानवाः ॥

निष्कर्ष यह है कि परमशिवस्वरूप श्रीगुरुदेवकी निष्कल (निर्गुण) तथा सकल (सगुण) दो अवस्थाएँ हैं ।

निष्कल ब्रह्म जब स्वभावतः अविचल अवस्थामें चलायमान होता है, तब वह शक्ति, जो उनसे अभिन्न रहती है 'उन्मना' कहलाती है । उनका स्थान शिवमें ही रहता है और जब उन्मना शक्ति स्वयमेव शून्यसे लेकर पृथिवीपर्यन्त दृश्यजगत्को रचती है, तब वह 'समना' कहलाती है । 'उन्मना' और 'समना' शक्तिकी संधि अथवा शिव और शक्तिकी संयुक्तावस्था ही 'नाद' है ।

जिस प्रकार प्रकाश या उष्णता अग्निसे अभिन्न है और उसके बिना नहीं ठहर सकती, उसी प्रकार ब्रह्मसे उसकी शक्ति भी अभिन्न है और उससे कभी अलग नहीं हो सकती । आगम कहता है—

न शिवेन विना देवी न देव्या च विना शिवः ।
न तयोरन्तरं किंचिच्चन्द्रचन्द्रिकयोरिव ॥

यह महाशक्ति विश्रमण अवस्था (प्रलय) में प्रकाशमय

ब्रह्मरूप होकर रहती है। इस अवस्थामें शक्तिका पृथक् विवेक नहीं रहता। अनावृत आकाशस्थ प्रकाशकी भाँति वह ब्रह्ममें लीन हुई रहती है। तब इसका महाबिन्दुरूप या परब्रह्म परमात्मरूपसे वर्णन करते हैं। इसी कारण प्रलयकालमें अनन्तशक्ति ब्रह्मके अविनाशी होनेके कारण सदा वर्तमान रहनेपर भी सृष्टि नहीं होती; क्योंकि ब्रह्मको अनन्त शक्ति देनेवाली इस महाशक्तिके उस कालमें तल्लीन हो जानेके कारण ब्रह्म अशक्त-सा हो जाता है। अनन्तशक्ति ब्रह्मके रहते भी इस शक्तियोंकी भी शक्तिके (जिसे आगममें विमर्श-शक्ति भी कहते हैं) सम्मुख हुए बिना ब्रह्ममें कोई शक्ति नहीं आ सकती; क्योंकि वह स्वयं निर्गुण, निष्कल निरञ्जन है।

'स्वच्छन्दतन्त्र' में कहा गया है—

चिदानन्दस्वरूपा तु परा शक्तिस्तदूर्ध्वतः ।
समना नाम सा शक्तिः सर्वकारणकारणम् ॥
यावत् सा समना शक्तिस्तदूर्ध्वे उन्मना स्मृता ।
नात्र कालकलाभानं न तत्तुर्न च देवता ॥

अर्थात् समस्त शक्तियोंके ऊर्ध्वमें सर्वकारण-कारण, चिदानन्दस्वरूपा 'समना' नामकी पराशक्ति है। इस समना शक्ति (कला) के ऊर्ध्वमें 'उन्मना' अवस्था है। इस अवस्थामें काल, कला, तन (शरीर) एवं देवताप्रभृति किसीका भी भान नहीं होता। जिस स्थानमें जाकर मनका मनस्त्व-धर्म, अर्थात् अन्तःकरणका कोई धर्म नहीं रहता, वही परम गोपनीया 'उन्मना' कला नामसे शास्त्रमें कही जाती है।'

यथा—

यत्र गत्वा तु मनसोमनस्त्वं नैव विद्यते ।
उन्मना सा समाख्याता सर्वशास्त्रेषु गोपिता ॥

सारांश यह है 'समना', अर्थात् मनके साथ रहनेसे या मनके अधोदेशमें रहनेसे संसार-बन्धनका कारण है तथा 'उन्मना' अर्थात् मनको ऊर्ध्वमें ले जानेसे भवपाश छेदन करनेवाली है। यथा कङ्कालमालिनी तन्त्र—

उन्मनासहितो योगी न योगी उन्मनां विना ।
उन्मना नाम तस्या हि भवपाशनिकृन्तनी ॥

अर्थात् जिन्होंने उन्मना-अवस्था प्राप्त की है, वे वास्तविक योगी हैं। अन्यथा उन्मना बिना योगी योगिपदवाच्य नहीं है। 'उन्मना शक्ति परमा सूक्ष्मा साक्षात् शिवस्वरूपिणी है।' यथा—

सा शक्तिः परमा सूक्ष्मा उन्मनी ।

निष्कर्ष यह है कि समतारूप प्रज्ञालोक ही समना कला है। इस स्थानमें साधक, मन्त्र और देवता—सब एकाकार हो जाते हैं। वहाँ प्रकाशमान, प्रकाश तथा प्रकाशक—इन तीनोंका कोई पृथक्-पृथक् अस्तित्व नहीं रहता एवं अभिन्न अस्तित्वमें ही एक अद्वितीय चित्स्वरूप अहं-सत्ता वर्तमान रहती है। यथा—

प्रकाशमानं न पृथक् प्रकाशात्
स च प्रकाशो न पृथग्विमर्शात् ।
नान्यो विमर्शोऽस्मि इतिस्वरूपा-
दहं विमर्शोऽस्मि चिदेकरूपः ॥

'जो मन्त्र-तत्त्वका आदि अकार वर्ण है, वही परम शिवस्वरूप परमात्मा है, जो प्रकाशरूप है तथा हकार, जो अन्तिम वर्ण कलारूप है, विमर्श-शक्तिस्वरूपा है, एवं नाद-बिन्द्वात्मक जो हैं, वही विश्व—चराचरके बीजके नामसे विख्यात होता है एवं ईश्वरकी मन्त्रशक्तिस्वरूपिणी कहा जाता है।'

यथा—

अकारः सर्ववर्णाग्र्यः प्रकाशः परमः शिवः ।
हकारोऽन्त्यकलारूपो विमर्शाख्यः प्रकीर्तितः ॥

पुनः वामनतन्त्रमें कहा गया है—

नादबिन्द्वात्मकं यच्च सा शक्तिरैश्वरी स्मृता ।
द्वयमेतत् समाख्यातं बीजभूतं चराचरे ॥

सारांश यह है कि सृष्टि-स्थिति-संहारात्मक सकल विश्वको कुक्षिमें लिये हुए इसी अहंभावका द्योतक महा-बिन्दु है। 'विमर्श-शक्ति सृष्टि उत्पन्न करनेकी इच्छासे बिन्दुरूपमें प्रकट होती है।' यथा—

विचिकीर्षुर्घनीभूता सा चिदभ्येति बिन्दुताम् ।

इस बिन्दुभावमें समस्त प्रपञ्चवासना तथा ज्ञेय-ज्ञातृ-ज्ञानभाव वटबीजके अन्तर्गत बीज और वृक्षकी भाँति सूक्ष्म भावसे लीन रहता है।

इस विश्वको आदिविमर्शमयी महाशक्ति अपने आकर (गर्भ) में लीनकर प्रकाशमय हो जाती है और कुछ काल

निस्तब्धरूपसे विश्राम करके विश्व-सृजनकी इच्छासे पुनः प्रकाशसे बाहर-सी होकर परब्रह्मके सम्मुख होती है और ब्रह्मको अपने सम्मुख करती है। दोनों दर्पणके समान निर्मल होनेके कारण परस्पर प्रतिबिम्बित हो जाते हैं, तब दोनों (शिव-शक्ति) के सम्पुटरूप अहं-विमर्शमयी आद्याशक्तिका प्रादुर्भाव होता है। सम्पूर्ण विश्व इसीके अन्तर्गत होता है। यही समस्त विश्वकी सृष्टि, स्थिति और प्रलयका कारण है और शब्दार्थ-सृष्टिका बीज है, जिसे श्रुतिमें नाम-रूपकी अव्याकृत अवस्था कहा गया है।

महाबिन्दुसे बिन्दुतक पहुँचनेमें अनन्त कलाओंसे व्याप्त उन्मनी, समनी, आञ्जी कला या व्यापिका कला, महानाद, नाद, बोधनी या निबोधिका तथा अर्द्धचन्द्रपर्यन्त सप्तविध प्रज्ञाका प्रान्त अथवा सप्तज्ञान-भूमिका स्थान कहा है। महादेवने स्वामी कार्तिकको भ्रूमध्यसे सहस्रदल-कमलके हंस-पीठस्थ श्रीगुरुदेवके अधिवास स्थानपर्यन्त निर्विकल्प प्रज्ञाभूमिका सप्तविध कारण-स्वरूपका उपदेश दिया था। तथा योगाचार्य पतञ्जलि ऋषिने भी सप्तविध प्रज्ञाकी प्रान्त-भूमिकी बात कही है। यथा—

'तस्य सप्तधा प्रान्तभूमिः प्रज्ञा ।' अर्थात् भ्रूमध्यस्थ-ऋतम्भरा प्रज्ञा उत्पन्न होकर निर्विकल्प समाधिका स्थान स्वरूप सहस्रदलकमलपर्यन्त सप्तविध कैवल्य-निर्वाण मोक्ष-प्राप्तिकी क्रमिक-भूमिका वर्तमान है। यथा—

इन्दुर्ललाटदेशे च तदूर्ध्वे बोधिनी स्वयम्।
तदूर्ध्वे भाति नादोऽसावर्द्धचन्द्राकृतिः परः॥
तदूर्ध्वे च महानादो लाङ्गूलाकृतिरुज्ज्वलः।
तदूर्ध्वे च कला प्रोक्ता आञ्ज्याख्या योगिवल्लभा॥
ततो हि व्यापिकाशक्तिराञ्जीतिर्या विदुर्जनाः।
समनीमूर्ध्वतस्तस्या उन्मनीं तु तदूर्ध्वतः॥

ऊपर कहा गया है कि विमर्श-शक्ति सृष्टि उत्पन्न करनेकी इच्छासे बिन्दुरूपमें प्रकट होती है। इस बिन्दुभावमें समस्त प्रपञ्च-वासना तथा ज्ञान-ज्ञातृ-ज्ञानभाव वट-बीजके अन्तर्गत वृक्षकी भाँति सूक्ष्मभावसे लीन रहता है। पश्चात् अन्तर्लीन जगत्को व्यक्त करनेकी इच्छासे वह महाबिन्दु त्रिकोणरूपमें परिणत हो जाता है। सहस्रदल-कर्णिकाके मध्य अकथादि रेखात्रययुक्त एक त्रिकोण-यन्त्र विराजता है। उक्त त्रिकोणका बिन्दुत्रय 'ह-ल-क्ष' वर्णसे सुशोभित है। इस प्रकार भावमय अवलालयको स्वयं भगवान् महादेव भी भजते हैं। एक महाबिन्दु ही त्रिबिन्दुमें विभक्त होकर वर्णमय त्रिकोण उत्पन्न करता है। यह बिन्दुत्रय ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवात्मक परमतत्त्व वर्णमय त्रिकोण बिन्दुतत्त्वसे उत्पन्न हुआ है। अकारसे विसर्गपर्यन्त षोडश वर्णयुक्त ब्रह्मरेखा प्रजापति हैं। ककारसे तकारपर्यन्त षोडश वर्णयुक्त परात्पर विष्णुरेखा है तथा थकारसे सकारपर्यन्त षोडश वर्णयुक्त शिवरेखा है। रज, सत्त्व तथा तमोगुणयुक्त रेखात्रय बिन्दुत्रयसे उद्भूत होकर योनि-आकारमें भूषिता है। उक्त रेखात्रय इच्छा, क्रिया एवं ज्ञानशक्तिस्वरूपिणी रमा, ज्येष्ठा तथा रौद्री नामसे अभिहित होती है। उक्त त्रिकोणके मध्यमें महाशून्य अवकाश ही गुणातीता परा प्रकृति है। अपने सम्प्रदायके अभीष्ट गुणातीत जगद्गुरु इस परा प्रकृतिके अधीश्वर होकर वहाँ विराजमान रहते हैं। अतः सभी सम्प्रदायोंके आचार्यगणोंने श्रीगुरुदेवकी महिमाका सर्वत्र वर्णन किया है। यह अवलालय सर्व-मङ्गलका आस्पद है। इसको 'हंसपीठ' कहते हैं। साधक इस त्रिकोणके मध्य परमबिन्दु या महाबिन्दुमें समाहित होते हैं। त्रिबिन्दु ही कामकलाके त्रिकोणको बनाता है। त्रिबिन्दु ही सूर्य, चन्द्र और अग्निरूप है। वही इच्छा, क्रिया और ज्ञानरूपा त्रिशक्ति है। वही सत्, रज और तमो-गुणसे युक्त है। उसीसे त्रिशक्ति—रौद्री, ज्येष्ठा और वामा और त्रिमूर्ति रुद्र, ब्रह्मा और विष्णुका आविर्भाव होता है। वही प्रकाश विमर्शमें परिणत होता है। वही त्रिपाद या तृतीय चरण है। श्रुतिमें चतुर्थ ब्रह्मपदका वर्णन है। बिन्दुसे तत्त्वोंका विकास होता है। तत्त्व बुद्धिसे पृथ्वी-पर्यन्त हैं। तत्त्वोंके छः देवता सातवें देवता परमशिवसे पृथक् हैं। पञ्चभूत और एक मन छः देवता हैं। सातवें देवता परम शिव हैं।

कङ्कालमालिनी तन्त्रमें श्रीगुरुदेवका ध्यान निम्न प्रकारसे कहा गया है—

सहस्रदलमध्यस्थमन्तरात्मानमुत्तमम् ।
तस्योपरि तयोर्मध्ये पञ्चास्यासनमुज्ज्वलम्॥
तस्मिन् निजगुरुं नित्यं......... ।
हंसपीठे मन्त्रमये स्वगुरुं शिवरूपिणम्॥
अमुकानन्दनाथान्तं संस्मरेन्नामपूर्वकम्।
शिरःपद्मे शुक्ले दशशतदले केसरगते॥
पतत्रिणां परशिवरूपं निजगुरुमिति।
तन्मध्ये तु त्रिकोणं स्याद् विद्युत्कारस्वरूपकम्॥

बिन्दुद्वयं च तन्मध्ये विसर्गरूपमव्ययम् ।
तन्मध्ये शून्यदेशे तु शिवः परमसंज्ञकः ।
सा तत्त्वसंज्ञा चिन्मात्रा ज्योतिषां संनिधेस्ततः ॥
विचिकीर्षुर्घनीभूय क्वचिदभ्येति बिन्दुताम् ।
कालेन भिद्यमानस्तु स बिन्दुर्भवति द्विधा ॥
बिन्दुर्दक्षिणभागश्च वामभागो विसर्गकः ।
तेन दक्षिणवामाख्यो भागो पुंस्त्रीविशेषितः ॥
हंकारो बिन्दुरित्युक्तो विसर्गः स इति स्मृतः ।
बिन्दुः पुरुष इत्युक्तो विसर्गः प्रकृतिः स्मृतः ॥
पुंप्रकृत्यात्मको हंसस्तदात्मकमिदं जगत् ।

सारांश यह है कि सहस्रदल कमलके मध्यमें अन्तरात्मा नाद-बिन्दुके उज्ज्वल सिंहासनपर विराजमान हैं । उनकी मन्त्रमय हंसपीठपर अपने गुरुदेवके रूपमें भावना करनी चाहिये । एवं उनका अमुकानन्दनाथ नामसे स्मरण करना चाहिये । यद्यपि परब्रह्म परमात्मा नाम-रूपसे अतीत हैं, तथापि उनकी उक्त रूप तथा नामसे उपासना या चिन्तन करनेका आदेश है । शिरःस्थित सहस्रदल कमलमें निज गुरुदेवकी परम शिवस्वरूपसे भावना करनी चाहिये । उक्त सहस्रदल कमलके मध्यमें विद्युदाकार एक त्रिकोण विराजमान है तथा उसके मध्यमें विसर्गरूपसे दो बिन्दु विराजमान हैं, जो शक्तिस्वरूप हैं एवं उनके मध्यमें शून्यदेशमें परम शिवस्वरूप श्रीगुरुदेव विराजमान हैं । वे घनीभूत होकर महाबिन्दु या परबिन्दु-स्वरूपसे विराजमान हैं । इसका वर्णन 'कुलार्णवतन्त्र'में निम्न प्रकारसे है । यथा—

बिन्दुरूपं परब्रह्म सहस्रदलसंस्थितम् ।
कर्णिकान्तस्त्रिकोणान्तर्मण्डलत्रयमण्डितम् ॥

'वह महाबिन्दु या परबिन्दु कालान्तरमें दो बिन्दुओंमें विभक्त होता है । उनका दक्षिणांश बिन्दुस्वरूप पुरुष या शिव 'हं' है और वामांशमें विसर्गस्वरूप प्रकृति वा शक्ति 'सः' है । इस प्रकार पुं-प्रकृत्यात्मकस्वरूप 'हंस' विराजमान है, जिसपर श्रीगुरुदेवका ध्यान किया जाता है । एवं प्रकृति-पुरुषात्मक अथवा शिव-शक्ति-स्वरूपसे जगत्का विकास होता है । इस प्रकार यह अखिल जगत् हंसमय है । अतः एक ही हंस सप्तलोकमें सप्तरूपसे विराजमान होता है, जिसका चिन्तन या उपासना अजपाजपमें की जाती है । यथा—

हंसो गणेशो विधिरेव हंसो हंसो हरिर्हंसमयश्च शम्भुः ।
हंसोऽपि जीवो गुरुरेव हंसो हंसः स आत्मा परमात्महंसः ॥

अर्थात् गणेश, ब्रह्मा, हरि, महेश, जीव, गुरु तथा आत्मा वा परमात्मा स्वरूपसे हंस ही विराजमान है । अतः निरुत्तर तन्त्रमें लिखा है—

हंकारेण बहिर्याति सकारेण विशेत् पुनः ।
हंसेति परमं मन्त्रं जीवो जपति सर्वदा ॥

अर्थात् 'प्राण 'हं' रूपमें बाहर जाता है और 'सः' के रूपमें पुनः भीतर प्रवेश करता है । इस प्रकार जीव परम मन्त्र 'हंस'का सर्वदा जप करता रहता है ।' यही जप जीवनका कारण है । इसके रुक जानेसे जागतिक व्यवहार नहीं हो सकते । उत्तरगीतामें कहा गया है—

आत्ममन्त्रस्य हंसस्य परस्परसमन्वयात् ।
योगेन गतकामानां भावना ब्रह्म चक्षते ॥
(११४)

'आत्मा वा जीवात्माका मन्त्र 'हंस' है । हं और सः—ये दोनों अक्षर अभेद रूपसे परस्पर समन्वित होकर अवस्थित हैं । योगके द्वारा कामना समूहगत होनेसे, जो भावना वर्तमान रहती है, वही तत्त्वज्ञानियोंका ब्रह्मभाव कहा जाता है ।' सद्गुरुके उपदेशानुसार जब उक्त जीवरूपी 'हंस' मन्त्रका सुषुम्णा नाड़ीमें विपरीतभावसे 'सोऽहं सोऽहं' प्रणालीमें जप होता है, उसीका नाम मन्त्रयोग है । एवं इस सोऽहं मन्त्रका 'सकार' व 'हकार' लोप करके विसर्जन करनेसे तब पूर्व-रूपाख्य संधिद्वारा ॐकार निष्पन्न होता है, यह ॐकार मन्त्र ही ब्रह्ममन्त्र है । इस प्रकारके मन्त्रयोगके अभ्याससे जीव-ब्रह्मकी एकता होती है । यथा योगवीज—

गुरुवाक्यात् सुषुम्णायां विपरीतो भवेज्जपः ।
सोऽहं सोऽहमिति प्राप्तो मन्त्रयोगः स उच्यते ॥
सकारं च हकारं च लोपयित्वा विसर्जयेत् ।
संधिं च पूर्वरूपाख्यस्ततोऽसौ प्रणवो भवेत् ॥

आगममें सकल ब्रह्मसे सृष्टिका विकास माना गया है । उसके पूर्व तत्त्वातीत अवस्था है, जिसका निष्कल ब्रह्मके नामसे संकेत करते हैं । शारदातिलकमें कहा है—

सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात् ।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद् बिन्दुसमुद्भवः ॥
(११७)

अर्थात् 'सत्स्वरूप परम शिव या श्रीगुरुदेवसे तथा चिदानन्दस्वरूपा उनकी शक्तिसे जिसको सकल ब्रह्मस्वरूप, सगुण ब्रह्म कहते हैं, सृष्टिका विकास होता है। सकल शक्तिसे नाद और नादसे विन्दुका विकास होता है। अतः महाविन्दु या परविन्दुस्वरूप परब्रह्म सहस्रदल कमलकी कर्णिका-के मध्य त्रिकोणमण्डलमें अवस्थित है। वह चन्द्र, सूर्य तथा अग्निरूपी त्रिमण्डलोंसे घिरा हुआ है। वह महाविन्दु निराकार तथा परम ज्योतिस्वरूप है। 'विन्दु' शब्द शून्यका बोधक है, जो सच्चिदानन्दस्वरूप है। यथा—

शून्यं तु सच्चिदानन्दमशब्दं ब्रह्मशब्दितम्।

अर्थात् 'शून्य सच्चिदानन्दस्वरूप है। वह अशब्द है तथा इसीसे शब्दब्रह्मका आविर्भाव होता है।' एवं वही गुणोंका भी सूचक है, जिनसे बृहद् ब्रह्माण्ड तथा क्षुद्र ब्रह्माण्डका विकास होता है। यथा तोडलतन्त्र—

निराकारं परं ज्योतिर्विन्दुं चाव्ययसंज्ञकम्।
विन्दुशब्देन शून्यं स्यात् तथा च गुणसूचकम्॥

महाविन्दुस्वरूप वृक्षके मूलमें प्रकृति ही ब्रह्मसे विग्रह करानेवाली है। महाविन्दु स्वयं दुर्गास्वरूप है तथा त्रिगुणा-त्मिका प्रकृति विश्वका कारणस्वरूप है। यथा—

विन्दुपुष्पतरोर्मूले प्रकृतिर्ब्रह्मविग्रहा।
विन्दुपुष्पं स्वयं दुर्गा प्रकृतिः पुष्परूपिणी॥

मन्त्रशास्त्रका विन्दु न अणु है, न रेखागणितका विन्दु है, जिसका स्थान है, किंतु परिमाण नहीं। मन्त्रशास्त्रके विन्दुका न स्थान है, न परिमाण। एकमें ही अनेक हैं। उसमें प्रकाश और अन्धकार दोनों हैं। महाप्रलयके पश्चात् यह विस्तृत संसार-रूपमें परिणत होता है। विन्दु शक्ति या चैतन्यका एक स्वरूप है। विन्दु ईश्वर-तत्त्व है। ईश्वरकी चेतनता ही पूर्णतः जगद्रूपमें परिणत है। वह जगत्को अपनेसे भिन्न नहीं समझता। यदि ऐसा समझे तो वह जीव है, ईश्वर नहीं है।

नाद और विन्दु शक्तिकी अवस्थाएँ हैं, जिसमें क्रिया-शक्तिका भाव निहित है। जो सृष्टिमें प्रधान हैं, वे सृष्टिकी दो उपयोगी अवस्थाएँ हैं। जो शक्तिके स्वरूप हैं। विन्दु शक्तिकी घनीभूत अवस्था है, सृष्टि करनेकी इच्छासे ही घनीभूत होती है। जिस प्रकार मक्खनका घी होनेके लिये दूध घनीभूत होता है। शक्ति क्रमशः सूक्ष्मसे स्थूलमें शक्ति तत्त्व और नादके द्वारा परिणत होती है। उस विन्दुकी एक अवस्था है, जो महाविन्दु या परविन्दु कहलाती है। वह अन्यान्य विन्दुओंसे भिन्न है। यह विन्दु सत्यलोकमें है, जो मनुष्य-शरीरके सहस्रदल कमलके मध्यमें स्थित है; वह चणकाकार स्वरूपसे स्थित है। उसका बहिर्कोष माया है, जिसके मध्य शिव-शक्ति दो बीज हैं, जो अभिन्न रूपसे स्थित हैं। सत्य-लोकमें रूपरहित विन्दु है। वह चणकाकारके सदृश, हाथ-पाँव इत्यादिसे रहित है। वह मायासे आवृत है, जिससे सृष्टिका विकास होता है। वही सूर्य, अग्नि और चन्द्र है, शिव-शक्ति-अभेदस्वरूप है। उसको विभक्त नहीं किया जा सकता। प्रलयकालमें शिव-शक्ति अद्वैत चैतन्यरूपसे स्थित रहते हैं; संसारमें उन्हींसे सृष्टि होती है, जो भी शक्तिस्वरूप है। तब वे परमात्मा, जीवात्मा और भिन्न-भिन्न भावोंमें विभक्त होते हैं। अतः आगममें कहा गया है—

'चणकाकाररूपा सा।'

अर्थात् ब्रह्मका स्वरूप चणकके सदृश है, जिसमें दो दाल शिव और शक्ति हैं। उसका आवरणकारक छिलका माया है, जो शिव-शक्तिको आवृत किये हुए है। परमात्मा-स्वरूप श्रीगुरुदेव जिस प्रकार सर्वव्यापी हैं, उसी प्रकार परमात्माका वाचक प्रणव सर्वव्यापी है।

यथा शारदातिलक—

भिद्यमानात् पराद्बिन्दोरव्यक्तात्मा रवोऽभवत्।
(१।११)

तत्प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम्।
वर्णात्मनाऽऽविर्भवति गद्यपद्यादिभेदतः॥
(१।१४)

अर्थात् परविन्दु जिस समय विभक्त हुआ था, अव्यक्तात्मक एक ध्वनि या नादकी उत्पत्ति हुई थी। शास्त्र-विशारद बुधगण जिसका शब्दब्रह्म कहकर उल्लेख करते हैं, वह शब्द क्रमशः स्थूलभावको प्राप्त होकर वर्णात्मक और गद्य-पद्यरूपसे स्थूलभावको प्राप्त होता है। वह शब्द-ब्रह्म स्वरूप ज्योतिर्मय ॐकार समस्त वर्णोंका निदान है। प्रणव, जो वेदका आदिबीज है, समस्त बीज-मन्त्रोंका कारण अर्थात् सेतुस्वरूप है। यथा—

'मन्त्राणां प्रणवः सेतुः।'

सारांश यह है कि शब्दब्रह्म अथवा नादसे वर्णोंकी

उत्पत्ति होकर वर्णमय त्रिकोणरूपमें परिणत होकर, अकथादि त्रयरेखिये 'हलक्ष' कोण भूषित होकर सहस्रदलमें अवस्थित होता है, जिसके मध्यमें सपीठपर श्रीगुरुदेवका ध्यान किया जाता है। उक्त त्रिकोणको 'वामभाव त्रिकोण' कहते हैं। निष्कर्ष यह है कि निष्कल ब्रह्मस्वरूप श्रीगुरुदेवमें जो तल्लीन शक्ति रहती है, उसे सरस्वती या वाग्देवी भी कहते हैं। सरस्+वती, अर्थात् संसरण करनेवाली शक्ति। इसका वाहन है—हंस। 'हं' ही शिव या पुरुषतत्त्व है और 'सः' शक्ति या प्रकृतितत्त्व है। 'हं' से 'सः' की ओर संसरणसे शक्ति विपरीत-भावसे प्रपञ्चाभिमुखी होती है। 'हं' अहमूका तथा 'सः' इदमूका पर्याय है। इस प्रवाहको उलट देनेसे 'सोऽहं' बनता है, जो प्रपञ्चसे परावाक् या परब्रह्मकी ओर ले जाता है। सोऽहं-साधन या अजपाजपकी यही महत्ता है। इसके द्वारा सहज प्रापञ्चिक संसरणमें वाक् अथवा शक्तिके प्रवाहको मोड़कर उसके अखण्ड उद्गमस्थान निष्कल ब्रह्मस्वरूप श्रीगुरुदेवकी ओर ले जाना पड़ता है। प्रवाहको विपरीत दिशामें ले जाना ही सोऽहं-साधनके श्रमसाध्य होनेका कारण है। इस क्रियामें, जहाँ द्रष्टा-दृश्य (शिव-शक्ति या अहम्-इदम्) का एकीकरण होता है, वहाँ साधकको नादकी अनुभूति होती है।

सृष्टि शब्दार्थभेदसे दो प्रकारकी है। तान्त्रिकोंका सिद्धान्त है कि अर्थसृष्टि भी शब्दमूलक ही है; क्योंकि संसारका ऐसा कोई भी व्यवहार नहीं है, जो शब्दपूर्वक न हो। सब प्रकारके अर्थके पूर्व शब्दका ही उदय होता है। तथा शब्द विना अर्थके भी अतीत, अनागत विषयों एवं सर्वथा असत् शश-शृङ्गादिको भी अपनी वृत्तिसे कल्पित कर देता है। अतः शब्द ही अर्थसृष्टिका भी मूल है। प्रलय-कालमें समस्त अर्थ-प्रपञ्चजाल परावाक्रूप शब्दब्रह्ममें लीन हो जाता है और सृष्टिकालमें पुनः प्रकट हो जाता है।

इस विन्दुरूप परावाक् (मूल कारणभूत विन्दु) से पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरीरूप त्रिपुटीके द्वारा त्रिकोणात्मक शब्दसृष्टि अभिव्यक्त होती है। विन्दुरूप परावाक् ही कारण-विन्दु है और पश्यन्ती आदि तीनों 'कार्यविन्दु' कहलाते हैं। इन चारोंको क्रमशः शान्ता, वामा, ज्येष्ठा और रौद्री तथा अम्बिका, इच्छा, ज्ञान और क्रिया भी कहा गया है। अव्यक्त (मूल प्रकृति), ईश्वर, हिरण्यगर्भ और विराट् इनके अधिदैव भाव हैं। कामरस, पूर्णगिरि, जालन्धर और औड्यानकी पूजाओंसे परिभाषित चार पीठ अधिभूत भाव हैं। मूलाधारस्थ कुण्डलिनी शक्ति इनका अध्यात्मभाव है। कुण्डलिनीका परिज्ञान ही तन्त्रका मुख्य प्रतिपाद्य है। यही परावाक् अथवा विन्दुतत्त्वका अध्यात्मरूप है। जब यह विन्दु पश्यन्ती आदि कार्यविन्दुओंके सृजनमें प्रवृत्त होता है, तब यह अव्यक्त कारण 'रव' नामसे पुकारा जाता है और यही रव 'शब्द' कहलाता है।

'स रवः श्रुतिसम्पन्नैः शब्दब्रह्मेति कथ्यते।

पुनः तन्त्रशास्त्रमें कहा गया है—

भिद्यमानात् पराद्बिन्दोरव्यक्तात्मा रवोऽभवत्।
तत्प्राप्य कुण्डलीरूपं प्राणिनां देहमध्यगम्॥
वर्णात्मनाऽऽविर्भवति गद्यपद्यादिभेदतः।
स्वात्मेच्छाशक्तिघातेन प्राणवायुस्वरूपतः॥
मूलाधारे समुत्पन्ने पराख्यो नाद उत्तमः।
स एव चोर्ध्वतां नीतः स्वाधिष्ठानविजृम्भितः॥
पश्यन्त्याख्यामवाप्नोति तथैवोर्ध्वं शनैः शनैः।
अनाहते बुद्धितत्त्वसमेतो मध्यमाभिधः॥
तथा तयोरुर्ध्वगता विशुद्धौ कण्ठदेशतः।
वैखर्याख्यस्ततः कण्ठशीर्षतालोष्ठदन्तगः॥
जिह्वामूलाग्रपृष्ठस्थस्तथा नासाग्रतः क्रमात्।
कण्ठताल्वोष्ठकण्ठस्थः कण्ठौष्ठद्वयतस्तथा।
समुत्पन्नान्यक्षराणि क्रमादादिक्षकावधि॥

अर्थात् जब अव्यक्तात्मक पराशब्द विभक्त हुआ था, एक शब्दकी उत्पत्ति हुई थी, जिसको 'रव' नामसे पुकारा जाता है। वह प्राणियोंके देहके मध्यमें कुण्डलिनीरूपको प्राप्त होता है, जिससे गद्य-पद्यादि भेदसे वर्णोंका आविर्भाव होता है। जब वह निष्पन्द रवात्मक शब्द वक्ताकी इच्छासे शक्तिके घात-प्रतिघातरूपमें मूलाधारमें आता है तब 'परावाक्' अथवा परानाद कहलाता है। जब वह शरीर वायुद्वारा स्वाधिष्ठान या नाभिमें आता है तब वह 'पश्यन्तीवाक्' कहलाता है। तथा जब वह रवात्मक शब्द 'पश्यन्ती' रूपको

प्राप्त होकर शरीर-वायुसे हृदयतक आता है, तब अनाहत चक्रमें निश्चयात्मिका बुद्धिसे युक्त होनेपर 'मध्यमा वाक्' कहलाता है । एवं जब वह शरीरवायुद्वारा विशुद्धचक्र वा कण्ठदेशमें आता है, तब 'वैखरी शब्द' वा वाक् कहलाता है। वह शब्द जब श्रुतिगोचर होता है, तब स्थूलरूप 'वैखरीवाक्' कहलाता है एवं जबतक वह श्रुतिगोचर नहीं होता, श्रुति-गोचर होनेके पूर्वकी अवस्थाको मध्यमावाक् कहते हैं। अर्थात् जिस शब्दको मन-ही-मन सुना जाता है, वही 'मध्यमा' वाक् है तथा जिसको मन भी नहीं धारण कर सकता, केवल अहं-तत्त्व उपलब्ध कर सकता है, वही शब्दतत्त्वकी 'पश्यन्ती' अवस्था है । एवं जो शब्दतत्त्वका प्रथम स्पन्दन या विकास है, जो बुद्धितत्त्वमें विकास पाता है, वही 'परावस्था' है । शब्दतत्त्वकी इस परा एवं पश्यन्ती अवस्थाको साधारण मानव हृदयंगम कर नहीं सकते। इस प्रकार ॐकार जो शब्दब्रह्मस्वरूप है तथा जगत्का आदि बीज है, उसके चार पाद हैं। उसके सात अङ्ग हैं। यथा—

अ, उ, म्, नाद, विन्दु, कला और कलातीत । प्रथम पञ्चाङ्ग ही प्रणवका प्रकृतिगत व्यक्त रूप अथवा सगुणरूप है, एवं अन्तिम दो निर्गुणरूप हैं । जिस प्रकार शब्दके द्वारा अर्थका बोध होता है, उसी प्रकार आदि बीजस्वरूप ॐकारकी उपासनासे परमात्माके सगुण और निर्गुण भावोंको प्राप्त किया जा सकता है। 'तस्य वाचकः प्रणवः' (योगसूत्र १ । २७) प्रणव-मन्त्र ही परमात्माका वाचक है। परमात्मा जिस प्रकार सर्वव्यापी है, उसी प्रकार परमात्माका वाचक ॐ भी सर्वव्यापी है । यथा—

ओमित्येतदक्षरमिदं सर्वम् । (माण्डूक्य० १)

जिस प्रकार विन्दुरूप परावाक् समस्त शब्दोंकी जननी है, उसी प्रकार समस्त अर्थरूप छत्तीस तत्त्वोंकी भी माता है। पञ्चमहाभूत (आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी), पाँच ज्ञानेन्द्रिय (श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, जिह्वा, नासिका) तथा पाँच कर्मेन्द्रिय (वाक्, पाणि, पाद, पायु, उपस्थ), पञ्च इन्द्रियोंके विषय (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध), मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृति, पुरुष, कला, अविद्या, राग, काल, नियति, माया, शुद्धविद्या, ईश्वर, सदाशिव, शक्ति और शिव—ये ही छत्तीस तत्त्व हैं। (शेष आगे)

जन्म व्यर्थ ही बीत गया

जनम तौ ऐसेहिं बीति गयौ ।
जैसैं रंक पदारथ पाये, लोभ बिसाहि लयौ ॥
बहुतक जन्म पुरीष-परायन, सूकर-स्वान भयौ ॥
अब 'मेरी मेरी' करि बौरे, बहुरौ बीज बयौ ॥
नर कौ नाम पारगामी हौ, सो तोहि स्याम दयौ ॥
तैं जड़ नारिकेल कपि-कर ज्यौं, पायौ नाहिं पयौ ॥
रजनी गत बासर मृग तृष्ना रस हरि कौ न चयौ ॥
सूर नंदनंदन जेहि बिसर्‌यौ, आपुहिं आपु हयौ ॥

—सूरदास

भगवन्नाम-जप

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

'कल्याण'के गताङ्कमें उपर्युक्त षोडश नामके भगवन्नाम-मन्त्रके २३,५१,९२,८०० (तेईस करोड़, इक्यावन लाख, बानबे हजार, आठ सौ) मन्त्र-संख्याके जप होनेकी सूचना छप चुकी है। हमें प्राप्त हुई सूचनाके अनुसार यह जप ९९६ स्थानोंपर हुआ है। उन स्थानोंकी नामावली नीचे दी जा रही है। कोई नाम छूट गया हो या भूलसे लिखा गया हो तो वहाँके सज्जन कृपया क्षमा करें।

—व्यवस्थापक—**नाम-जप-विभाग**

स्थानोंके नाम

अंकोला, अकलतारा, अकोला, अकोदड़ा, अगरतल्ला, अगरपुर, अगवानपुर, अचलगंज, अचलजामू, अजनौरा, अजबपुरा, अजमेर, अजीमगंज, अठेहा, अड़गाँव, अतरसुइया, अन्तपैठ, अनीसाबाद, अनुसाफटी, अपहर, अमनौर, अमरपुराजाल्ढ, अमलापुरम्, अमारुत, अमृतसर, अम्पोलू, अम्बापलाश, अम्बाला, अम्बाह, अरई, अरड़का, अरनतंगी, अरसिया, अरारिया, अल्मोड़ा, अल्हागंज, अलवर, अलीगढ़, अलीगंज, अलीराजपुर, अशोकपुर, असमौली, असाव, अहमदनगर, अहमदाबाद, अहेरी, आगरा, आगूँचा, आजमगढ़, आनन्दपुरसहिला, आयराखेरा, आरा, आवगिला सायर, इटकी, इटारसी, इटावा, इटैरगढ़, इटौंगा, इन्दरगढ़, इन्दौर, इरागुडा, इलाहाबाद, इसकिल, ईगतपुरी, ईडर, ईरा, ईडापट्टी, ईसागढ़, उज्जैन, उजान-गंगौली, उजैली, उत्तरसगा, उदयपुर,उदयपुरा, उमधा, उमरखेड, उमरी, उरई, उरदान, ऊँचा, ऊना, एकडंगा, औरंगाबाद, औरैय्या, ऐंचर, ऐझीकोटवा, कइतगढ़, कंकरखेड़ा, ककढ़िया, ककवारा, कचनारी, कटनी, कटहरिया, कटिहार, कडोली, कन्नौज, कन्नोद, कनकी, कनार्डा, कनेरा, कपकोट, कपिलेश्वरपुरम्, कफलोड़ी, कमलेश्वर, कमासिन, करगीरोड, करधना, करनैलगंज, करवाड़, कदवासा, करविन्दा, करसौत, करीमनगर, करेली, करोम, करौल, कलकत्ता, कलसाड़ा, कवठल, कवलापुर, कसियापश्चिम, कस्ठुआ, काँकरोली, काँचरापाड़ा, काँठ, काँवट टाउन, काजड़ा, कादरगंज, कान्हाचट्टी, कानपुर, कालिम्पोंग, काल्लूपाकड़, कालेड़ाकृष्णगोपाल, कासगंज, कुछी, कुड़ासा, कुढुम्बा, कुठेडा, कुड़ई, कुड़वामठिया, कुड़ासन, कुपड़ी, कुम्हारी, कुमना, कुरथल, कुलकुलपल्ली, कुलगढ़ी, कुहुरी, कूँडिया, कूँमणी, कूचविहार, कृतकृत्य रामेश्वरम्, केड़गाँव, केयाल, केवलारी, केशवाँ, केसठ, केसरगंज, कैकलूर, कैथा, कैथाखण्डी, कैथोली, कैलाशपुरी, कोकरीकला, कोचीन, कोठफतुही, कोटरी, कोटा, कोठालंका, कोठिया, कोठीचारकलाँ, कोडीपल्ली, कोद, कोदुवायूर, कोनी, कोमनापल्ली, कोरी, कोलर, कोलाड, कोलीपाली, कोसली, कोहका, कौडिया, कौड़ी, कौडीकसा, कौलोडिहरी, खगौल, खप्टिहाकलाँ, खमरिया, खरकड़ीकलाँ, खरमी, खरेगा, खरोसा, खल्लारी, खवासा, खाँडाखेडी, खादरोद, खारकलाँ, खास, खासबाग, खिदिरपुर, खुर्जा, खेडा, खेरली, खैजड़ा, खैरागढ़, खोरी, गंगधार, गंगापुर, गंगोह, गंजाम, गढ़र, गढ़वा, गढ़ाकलाँ, गढ़ी, गढीपुरा, गभड़िया, गया, गरीफा, गरोठा, गल्लेबारगाँव, ग्वालदम, गवालपुर, गाजीपुर, गाडरवारा, गादीश्रीरामपुर, गिरी, गुजरी, गुंजरचक, गुड़गाँव, गुडेवल्लूर, गुना, गुरसराय, गुलबर्गा, गुलाबगंज, गुवाकोला, गैंदाकबूला, गैली, गोघटपुर, गोण्डा, गोंडल, गोंदिया, गौंहरा, गोनौन, गोपामऊ, गोपालपुर, गोरौल, गौरंगचौड़, घंसौर, घाटशिला, घुरैया, चक, चकतारा, चकिया, चन्दनपट्टी, चन्दरपुरा खुर्द, चन्दा, चन्देरी, चनपटियाबाजार, चनौदा, चमुवाँगूढ़, चरौदा, चाँदपुर गनेश, चाँदी, चाँदीघर, चान्दपुरा, चाल्दीगन्हल्ली, चालाकुडी, चाँवडिया, चिकोडी, चितहरी, चिरहुली, चिलवरिया, चिल्यिर नौला, चीनाखान, चुनार, चेचर, चेरिया बरियारपुर, चोई, चोबेपुर, चौसा, चौहट्टा, छछून्द, छतरपुर, छपकहिया, छपरा, छातापुर, छिन्दवाड़ा, छौरहिया, जरवनी, जटमलपुर, जतनी, जबलपुर, जम्मू तवी, जमशेदपुर, जमालीपुर, जमुई, जयपुर, जरहौलिया, जलगाँव, जवासिया, जवाहरनगर, जसरा, जसराना, जहाँगीराबाद, जाँजगीर, जाट, जामठी, जायाबाजार,

जालन्धर, जालन्धर कैन्ट, जिरौली, जीजामगाँव, जीराबाद, जुनेदपुर, जैकोट, जैतपुर, जैली, जैसलमेर, जोगवनी, जोधपुर, जोरावरडीह, जोशीमठ, जोशीखोला, जौनपुर, झँझारपुर बाजार, झगराखाँड, झड़वास, झरियापाली, झाझा, झार, झारसुगुड़ा, झाँसड़ी, झाँसी, झिरनापोंड़ी, झिरनावार्ड करेली, झुमियावाली, झूँझनू, झूलाघाट, टिकोरी, टिगिरिया, टिमरनी, टीकमगढ़, टीकेग्राम, टेहटा, डगरुआ, डयोठी, डारडोली, डिकौली, डिमौली, डीडवाना, डुमरगानी, डुमरी, डुमरिया, डुमरिया खुर्द, डूँगर, डूँगरपुर, डोकाकुई, डोगरगाँव, डोंगरिया, ढाणकी, ढीकहाँ भवानीपुर, ढोठमा, तंजोर, तख्तपुरा, तरीपल, तरेंगा, तलडीह, तलवास, तागा, तिरको, तिलकपुर, तिलहर, तुंगनी, तूमड़ा, तेजपुर, तोपालकला, तौरा, थटिया, थर, थरमिटा, थाटी, थामरासरी, थिराथुरीपुण्डी, दमोह, दरभंगा, दरयागंज, दरियाबाद, दरेवाड़ी, दलकी, दशरमन, दहौरा, दामोदरपुर, दारगाँव, दिग्घी, दिनारी, दिल्ली, दुन्दपुर, दुमका, दुर्ग, दुर्गावती, दूदिया, देवली, देडगाँव, देलोधा, देवगढ़, देवनगर, देवरिया, देवरीबखत, देवास, दोन, धनकीकोट, धनगाँवा, धनज, धनहाँस, धमनापायक, धर्मपुरा, धर्मशाला, धरान (नेपाल), धामणगाँव, धामपन्ना, धारवाड़, धुरला, धौधुका, धौरपुर, धौलापुर, नंदुरबार, नयी दिल्ली, नगरवेरा, नदनवार, नदवई, नयाखुसीयार, नयागाँव, नरवारा, नरसिंहगढ़, नरसिंहपुर, नवादा, न्यौली, नागपुर, नागलवाड़ी, नागौर, नानोर, नायकोटवाडी, नारदीगंज, नारहट, नारवारा, नारायणगढ़, नारायणपुरम्, नारायणपेठ, नालाकुण्टा, नासिक, निगोही, निजामाबाद, निर्मल, निर्मण्ड, निरसाचट्टी, निवाड़ी, नुन्गावरम्, नेतनगर, नेतलपुर, नैगवाँ, नैनी, नैपालगंज, नैमिषारण्य, नोसर, नोहझील, नौतनवाँ, नौरोजाबाद, नौला, पंचासिया, पंढरपुर, पंथपाकर, पकड़ीकलाँ, पकरिया, परवरपार, पचखेडी गाँडली, पचरुखा, पचैण्डाकला, पचैनाबाजार, पटियाली, पडरिया, पनखारिया, पनगरा, पपौंध, परतेवा, परलीवैजनाथ, परसदा, परसीपुर, प्रतापगढ़, प्रतापनगर, प्रभुटँडा, प्रसन्ननगर, प्रह्लादपुर बाँगर, पलंगा, पवारखेड़ा फार्म, पहाड़ीबुजुर्ग, पहासू, पहोरी, पाटन, पाटणवाव, पाँडेगाँव, पाण्डेटोला, पातुरनन्दापुर, पानीतोला, प्रागपुरा, पिंजोरा, पिंड्रावल, पिपरखेरे, पिपरा, पिरदा, पीनना, पीपरतराई, पीपरी गहरवार, पीपलरावाँ, पीपलवाड़ा, पीपल्याजोधा, पीपल्द, पुदुकोटई, पुनाहाना, पुरहिया, पुरचंदनभारी, पुवायाँ, पूना, पेटलाद, पेंड, पेण्ड्रा, पेण्ड्री, पेड़गाँव, पैंची, पोचानेर, पोरबन्दर, पोवइया, पौण्डरी, पौनी, फतेहपुर, फरल, फखरपुर, फरह, फर्रुखाबाद, फागी, फारबिसगंज, फिरोजाबाद, फुलपरास, फूफेर, फूलपुर, फैजपुर, बंग्रोद, बंगलौर, बक्सर, बकेवर, बखरी, बखिराबाजार, बगनमुरा, बचगन, बजनरूप, बटरेल, बटाला, बड़कली, बड़गाँव, बड़हलगंज, बढ़याचौक, बदायूँ, बनपुरा बाजार, बम्बई, ब्यावर, बरवट, बराटा, बरालोकपुर, बरूँधन, बरेली, बरैल, बरौली, बलकौरा, बलरामपुर, बल्लभनगर, बल्लारपुर, बलवड्डा, बलिया, बलुआ, बलौरा, बस्ती, बस्सी, बसरवारी, बसरामऊ, बसवनकुण्डली, बसवेडिया, बहराइच, ब्रह्मावली, बाँगरौद, बाँदा, बाँसगाँव, बाँसा, बारखेड़ा, बाँसी, बाकरपुरजंगल, बागड़िया, बागचीनी, बाघानाला, बाड़मेर, बानमेर, बाबूडीह, बामौरकलाँ, बारपली, बाराबंकी, बारू, बालगढ़, बालबंगरा, बालापुर, बावल, बासदेवाँ, बासन, बिछवाँ, बिजयपुर, बिपतरा, बिरौंड़ी, बिलन्दा, बिसरा, बिकरन्दा, बुटीबोरी, बुद्धचक, बुधारा, बुन्डू, बुरला, बुलडाना, बुलन्दशहर, बूँदी, बेढना, बेमेतरा, बेवढुकरी, बेलगाम, बेलनगंज, बेलमंडई, बेलरगोंदी, बेलौढ़ी, बेवहुकरी, बैढ़न, बोगला, बोरलाय, भटखेरी, भटगामा, भटनावर, भटलो, भट्टपुरा, भठवा तिवारी, भतहर, भद्रपुरा, भदान, भरतोली, भरथापुर, भरपौली, भरोसा, भवदेवपुर, भवनाथपुर, भागलपुर, भाटपचलाना, भाटापारा, भाटाबारी, भादौर, भाभरे, भाल्ला, भावनगर, भिण्डर, भिवानी, भीमड़ावास, भीमनगर बराज, भीलवाड़ा, भुरका, भुसावल, भूरेवाला, भैंसवोड़, भैंसहरा, भोकरदन, भोपाल, भौरीगंज, मंगरुल, मंचरियाल, मक्रोनिया कैम्प, मगरदर्रा, मचून, मढ़न, मथुराबाजार, मद्रास, मधवापुर, मंजाकुपम्, मनफरा, मनासा, मनीमाजरा, मरजादपुर, मरवाडी, मराठवाडा, मलकापुर, मलणगाँव, मलहारा, मलारना डूँगर, मवई, मस्की, मस्तीचक, महंतपारा, महनार, महमदपुर वदल, महाराजगंज, महाराजपुर, महरौनी, महीदपुर, महुअवा, महुतरी, महेन्द्रगढ़, महो, माटे, माधोनगर, माधोपुर, मानिकवाद, मायना, मार डोंगरी, मारवाड़, मालीपुर, मालेवरम्, मास्तर, मिर्जापुर, मुँदी, मुकुन्दगढ़, मुगरदर्रा, मुजफ्फरनगर, मुन्सिफ, मुरादपुर,

मुरादाबाद, मुरारा, मुल्ताई, मुलाना, मुहम्मदाबाद, मेरठ, मेरी, मेहकर, मेहकर टेकभालकी, मेंहदावल, मेहसी, मैनपुरी, मैसूर, मोरटाकेवड़ी, मोरवाड़ा, मोर्शी, मोहनपुर, मौदहा, मौलागढ़, योसार पिपरिया, रघौली, रतनपुर, रतनाड़ा, रतवल, रतवाय, रमना, रहढ़ा, रहावली उबारी, राँची, राजगढ़, राजापुर, राजेपुर, रानीकटरा, रानीखेत, रानीपुर, रानीपुल, रानीबाग, रानीबाजार, रामगढ़, रामडिग्गीपुर, रामनगर, रामपुर, रामपुर फार्म, रामलीला मढ़ी, रामासपार, रायगढ़, रायलारोड, रायसिंहनगर, रायसेन, रारौठा, रूपैडिहा, रेंका, रेनूकूट, रोटा, रोडिणी, रोडिरा, रोहतक, लखनऊ, लखनपुर, लखीमपुर खीरी, लत्ता, लपरा, ललितपुर, लश्कर, लक्ष्मणपुर, लाँजी, लाठी, लाड़कुई, लाड़पुर, लालगढ़, लालजीका तालाब, लासलगाँव, लासुर, लीलापहीवन कटिया, लीलापुर, लुनावाड़ा, लुधौसी, लुम्बिनी सुकमा, लूणकरनसर, लेदा, लोहई, लोहनापश्चिम, लोहरदगा, लोहागीर, लौर, लौरिया, वंगसराय, वंकेवरसराय, वरिवायारपुर, वड़वाह, वडावे, वढ़्या चौक, वनकटी, वनतोली, व्याघ्रपुरम्, वरियारपुर, वरुअटा, वृंदावन, वल्लभनगर, वलिगाँव, वलैठा, वाडीनैकोट, वाराणसी, वारंगल, वालनरकोटेज, वालोन, वावीलाल, वावैल, विजोलिया, विदरी, विदिशा, विलसड़ा, विलासपुर, विशाखापट्टम्, विष्णुदत्तपुरा, वीणा, वीनागंज, वीमैडी, वीरापुर, वेंकापुरम्, वेखलटी, वैदवली, वैरसिया, वोरगाँववरु, वौरीसराय, शक्ति, शकूरबस्ती, शरफुद्दीनपुर, शरुद्दीपुरम्, शाजापुर, शासन, शाहजहाँपुर, शाहपुर, शाहपुरपट्टी, शाहाबाद, शिकाड़ा, शिकोहाबाद, शिमला, शिरुर कासार, शिलकोट, शिवगंज, शिवली, शिवनगरी, शिवपुरी, शेखयापुर, शेरगढ़, श्रीगंगानगर, श्रीपुर, श्रीभट्टुग्गमुला, श्रीरामपुर, संगमवाड़ी, संगरूर, सइयगाँव, सठियाँव, सतना, सत्रा, सदायविगहा, सनावड़ा, सम्भलपुर, समनापुर, समेसर, समोधपुर, स्योरामऊ, सरखो, सरगाँव, सरवल, सरेरी, सल्हियाभाटा, सलेमगढ़, सलेमपुर, स्वर्गाश्रम, सहडोल, सहरसा, सहारनपुर, साकोला, साकोली, सागर, सागरदिघी, सातों, सातोजोगा, सादरगाँव, सामन्तियापली, सामागुड़ी, सारसा, सालपहाड़, साल्वाकलाँ, सासाराम, सिंगहा यूसुफपुर, सिंगोली, सिंहपुर बड़ा, सिकंद्राबाद, सिकरी बुर्जुर्ग, सिकरों, सिद्धल, सिन्दूरी, सिमरौल, सियाली, सिरहा, सिरोही, सिवनी, सिवहारा, सिवाड़, सिसवाँ, सिहोरा, सीगोन, सीतापुर, सींथल, सीधारी, सीतापट्टी, सीतापुर, सीनापली, सीलेगाँव, सीवन, सीवनी, सीहोर, सुखेडा, सुगाँव, सुडसर, सुन्दरगढ़, सुन्दरसी, सुरजावासा, सुरपा, सुल्तानगंज, सुल्तानपुर, सुलह, सुसनेर, सुसारी, सूर्यपुरा, सूरतगढ़, सूलिया, सेमराकैम्प, सेवास, सैदापुर, सैमली, सैयदपुर, सोंढ, सोनगाँव, सोनरे, सोरखंडकला, सोरर, सोहन्दर हाट, हजारीबाग, हढ़वा, हनमकोण्डा, हफीजाबाद, हमूनाबाद, हम्मीरपुर, हरदा, हरदीटोला, हरदोई, हरसेर, हरिद्वार, हरिहरपुर, हलद्वानी, हसनगंज, हँसडीहा, हाँफा, हाँसी, हाठूघाघरा, हाजीपुर, हाथरस, हाथीसर, हिंगनघाट, हिंडोरिया, हिलौंधा, हीसापीटी, हुसनगंज, हेलौघा, हैदराबाद, होशंगाबाद, होशियारपुर, होसपेट।

भगवन्नामकी महिमा

ये वदन्ति नरा नित्यं हरिरित्यक्षरद्वयम्। तस्योच्चारणमात्रेण विमुक्तास्ते न संशयः॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं भाषितं मम सुव्रत। नामोच्चारणमात्रेण महापापात्प्रमुच्यते॥
राम रामेति रामेति रामेति च पुनर्जपन्। स चाण्डालोऽपि पूतात्मा जायते नात्र संशयः॥
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति इति वा यो जपन् पठन्। इहलोकं परित्यज्य मोदते विष्णुसन्निधौ॥

(पद्मपुराण उत्तरखण्ड)

जो मनुष्य 'हरि' इस दो अक्षरके नामका उच्चारण करते हैं, वे उसके उच्चारणमात्रसे मुक्त हो जाते हैं। इसमें तनिक भी संदेह नहीं है। ब्रह्माजी कहते हैं—नारद! मेरा कथन सत्य है, सत्य है, सत्य है, भगवान्के नामोंके उच्चारणमात्रसे मनुष्य बड़े-बड़े पापोंसे मुक्त हो जाता है। 'राम राम राम राम'—इस प्रकार बार-बार जप करनेवाला मनुष्य यदि चाण्डाल हो, तो भी वह पवित्रात्मा हो जाता है, इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है। जो 'कृष्ण, कृष्ण, कृष्ण' इस प्रकार जप-कीर्तन करता है, वह इस संसारका परित्याग करनेपर भगवान् विष्णुके समीप दिव्य आनन्द प्राप्त करता है।

पढ़ो, समझो और करो

(१)

प्रार्थनाका प्रभाव

मैं सन् १९५८ के आखिरी सप्ताहमें सख्त बीमार पड़ गया था। पेटमें जोरका दर्द, सख्त कब्जियत और ज्वर। बीमारी बढ़ती देख हमारे डाक्टर कुटे साहबने महाराजा यशवन्तराव अस्पतालमें दाखिल होनेका परामर्श दिया। मैंने इसे अस्वीकार करते हुए निवेदन किया कि 'एम्० वाय० अस्पतालके डाक्टर साहबको अपने बंगलेपर आमन्त्रित किया जाय और यदि आवश्यक हो तो यहीं आपरेशनका प्रबन्ध किया जाय।'

दूसरे दिन डाक्टर कुटे एम्० वाय० एच्० के डाक्टर कुमारको साथ लेकर आये। दोनोंने देरतक मेरी जाँच करनेके बाद कहा—'कुछ भी हो, आपको बिना किसी देरके एम० वाय० एच० के वार्डमें रहकर इलाज कराना ही होगा।'

डाक्टर कुमारने स्वतन्त्र कमरेकी व्यवस्था करवा दी और प्रातःकाल (११ जनवरी १९५९) एम्बूलेन्स कारसे वहाँ दाखिल करा दिया। उसी दिन शामको डाक्टर साहबको चौबीस घंटेके लिये बाहर जाना आवश्यक था, इसलिये उसी दिन मेरा एक्सरे ले लिया गया और खूनकी तथा पेशाबकी जाँच करा ली गयी। डाक्टर साहबने बाहर जानेसे पूर्व अपने सहायक डाक्टरको समझा दिया कि मेरे परीक्षणकी सब रिपोर्ट डाक्टर अकबर-अलीको दिखलाकर उनकी रायके अनुसार मेरा इलाज चालू रक्खा जाय।'

डाक्टर अकबरअलीने सब रिपोर्टें (खूनकी जाँच इत्यादि की) देखकर अपने वार्ड (चौथे मंजिल) पर मुझे बुलवा लिया। संयोगवश मुझे एक बड़ा कमरा एवं खुली गच्ची (open semi terrace) भी मिल गयी। दूसरे दिन (ता० १४ जनवरी सन् १९५९) मेरे कलेजेका उन्होंने ड्रीलिंग करवाया, उसमेंसे पीप (pus) निकलते ही वे बोल उठे—'ओह पुराने पेचिसने गजब ढा दिया।' दूसरे दिन आपरेशन होनेवाला था परंतु जयपुरके मेडिकल कान्फरेन्समें डाक्टर अकबरअलीको सम्मिलित होना आवश्यक था। अतः जयपुर जानेसे पहले वे मेरे उपचारका प्रबन्ध डाक्टर नन्दीके सुपुर्द कर गये।

गीताप्रेसकी 'मननमाला' पुस्तकमें जो श्रीकृष्ण भगवान्‌की तस्वीर है, उसे मैं सर्वदा अपने पास रखता हूँ, उसीको मैं अपने साथ अस्पताल भी ले गया था। इस समय मैं उस तस्वीरके समक्ष भगवान् श्रीकृष्णसे बार-बार प्रार्थना कर रहा था—'हे प्रभो! दीनदयालु! मैं तेरी शरण हूँ, मेरा अन्त इस बिस्तरमें ही रात्रिको हो जाय। यदि तेरी इच्छा (if thy will) नहीं हो तो मेरे पेट इत्यादिका दर्द बिल्कुल मिटा देनेकी कृपा हो, ताकि मेरा चीर-फाड़ (आपरेशन) के कष्टसे छुटकारा हो।'

ता० २२।१।५९ को चौथी या पाँचवीं रात्रिके १॥ या २ बजे कुछ अर्ध-निद्रित अवस्थामें मैंने श्रीकृष्ण भगवान्‌को हाथमें बंसी लिये ठीक उसी तरहकी वेष-भूषामें, जैसा कि उपर्युक्त तस्वीरमें है, एक गहन हरे वृक्षके नीचे खड़े हुए देखा। कुछ क्षण बाद उसी वृक्षकी ऊपरकी शाखापर बैठे हुए एक काले रीछके गलेमें एक मोटी रस्सीका फंदा डालकर किसीने उसे ऊपर वृक्षपर खींच लिया। रीछको खींचनेवाला मुझे दिखलायी नहीं दिया। भगवान् श्रीकृष्ण भी उस वृक्षके नीचे खड़े हुए कुछ मिनट पश्चात् अदृश्य हो गये। मैं अपने बिस्तरपर बैठ गया। मैंने पत्नीको जगाया, पानी पिया और भगवान्‌के दर्शनका पूरा विवरण मैंने उनको कह सुनाया।

मेरी पत्नीने प्रसन्न होकर कहा—'भगवान्‌की असीम कृपा तथा दयासे आप आजसे स्वस्थ हो जायँगे।' वैसा ही हुआ। मेरे पेटका दर्द उसी दिनसे चला गया। यकृत (Liver) अच्छा हो गया। जयपुरसे वापस आते ही मेरी जाँच करके, डाक्टर अकबरअलीने कहा—'अब आपरेशन या ड्रीलिंग (पीप निकालने) की आवश्यकता नहीं रही, परंतु दवाइयाँ इत्यादि लेते रहना होगा।'

इस तरह भगवान्‌की दयासे मैं पेटदर्द तथा कलेजेकी चीर-फाड़ (आपरेशन) एवं सख्त बीमारीसे शीघ्र एक-दम छुटकारा पा गया। कुछ ही दिन पश्चात् अस्पतालसे ता० ४।२।५९ को छुट्टी पाकर अपने घर सानन्द

सकुशल आ गया। कुछ वर्ष और ईश्वर-भजनके लिये मिल गये। इस समय मेरी अवस्था ७७-७८ वर्षकी है और शनिकी साढ़-साती चल रही है।

—नारायणसिंह

(ठाकुर नारायणसिंह 'विक्रम' बी० ए०, एल्-एल् बी०, एच्-सी-एस्, इन्दौर)

(२)

आदर्श भ्रातृत्व

एक गर्भ-श्रीमान् विशाल कुटुम्ब था। घरके वृद्ध पिताकी मृत्यु हो गयी। दो लड़कोंके हिस्सेमें लाखोंकी सम्पत्ति आयी। कुछ वर्षों बाद बड़े लड़केने बम्बई जाकर व्यापार शुरू किया और अपने हिस्सेमें आयी हुई सारी पूँजी उसमें लगा दी। छोटा भाई देशमें ही बाप-दादोंका चालू धंधा करता रहा।

कई वर्ष बीत गये। विधाताका विधान, बड़े भाईके व्यापारकी स्थिति पलट गयी। सट्टेमें सब कुछ समाप्त हो गया। धंधेमें जबरदस्त धक्का लगा। आघात असहनीय था, परंतु वह था मजबूत दिलका आदमी। अतः किसीको भी पता न लगे—इस प्रकारसे उसने सम्पत्ति बेच दी और सबकी रकम चुकाकर व्यापारमें इज्जतको बनाये रक्खा। अन्तमें भारी हृदयसे सदाके लिये बम्बई छोड़कर वह सकुटुम्ब देश आ गया।

देशमें छोटे भाईको बड़े भाईकी इस बदली हुई स्थितिकी जानकारी नहीं थी। बड़े भाई कुटुम्बसहित घर आ गये, इससे उसको आनन्द हुआ।

परंतु छोटे भाईसे यह छिपा नहीं रहा कि बड़े भाईकी स्थितिमें कुछ जबरदस्त परिवर्तन हुआ है। उनका आनन्द, उल्लास और बादशाही शान-शौकत कहीं अदृश्य हो गये हैं। अब वे पहलेकी तरह बेफिक्रीकी बातें नहीं करते। न कहीं घूमने ही जाते हैं। गुम-सुम घरमें बैठे कुछ सोचा करते हैं। क्या हो गया है उनको ?

एक दिन उसने बड़े भाईसे इसका कारण पूछा, पर उन्होंने बात उड़ा दी और कहा—'यह तो जरा सुस्ती-सी मालूम होती है। हवा बदलनेसे ऐसा हो जाता है।'

यों कुछ दिन बीते, पर बड़े भाईकी सुस्ती और उदासीनता नहीं मिटी।'

भाइयोंमें मेल इतना कि बड़े भाईकी यह छिपी अशान्ति छोटे भाईसे देखी नहीं गयी। उसको लगा कि बड़े भाई अवश्य ही कुछ छिपा रहे हैं। उसने अपनी पत्नीके द्वारा भाभीसे पता लगाना चाहा, परंतु भाभीने भी कुछ नहीं बताया।

अन्तमें, एक दिन बड़े भाईको बाहर घुमाने ले जाकर उसने पूछा। बड़े भाईने पहले तो बातको उड़ानेका प्रयत्न किया; किंतु आखिर छोटे भाईके प्रेमाग्रहके सामने उन्होंने हार मान ली और उनके हिस्सेमें आयी हुई सम्पत्तिका एक-एक पैसा उन्होंने किस प्रकारसे सदाके लिये खो दिया—यह सारा विवरण बता दिया।

समझदार छोटा भाई सब समझ गया। उसे चोट लगी। बड़े भाईने भूल की थी यह भी उसे लगा, परंतु उसने हँसते-हँसते कहा—'इससे क्या हो गया भाईजी! मेरा पैसा तो आपका ही है न ?'

बड़े भाईने कहा—'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। अपनी सम्पत्तिका हिस्सा बाँट चुके हैं। मैंने अपना सारा हिस्सा खो दिया है, तेरे पास जो कुछ है, वह सब तो तेरा ही है, उसपर मेरा जरा भी हक नहीं है।'

छोटे भाईका हृदय खलबला उठा—'भाईजी! आज मेरे-जैसा आपके लड़का होता तो आप उसकी सहायता लेते कि नहीं ? पिताजीके जानेके बाद आपने सदा ही मुझे पिताके समान स्नेह दिया है और मुझे अपने पुत्रकी तरहसे रक्खा है। अब मुझे भी पुत्रके योग्य कर्तव्य पालन करने दीजिये।'

बड़े भाईने उस समय तो छोटे भाईके आग्रहसे यह स्वीकार कर लिया—'अच्छा, मैं विचार करके देखूँगा।'

दूसरे दिन बड़े भाईने विचार करके उत्तर दिया—'भाई! विचार करनेपर मुझे ऐसा लगा कि तेरे पैसे मुझको नहीं लेने चाहिये। यह पैसेका सवाल है। हम दोनोंका एक खून है, इससे तुझे बुरा नहीं लगेगा। परंतु तेरे पैसोंपर तेरी पत्नीका और तेरे पुत्रोंका ही हक है, वह मेरेद्वारा कैसे छीना जाय ?'

छोटे भाईने उसी दिन अपनी पत्नीको सारी बातें कहीं। दोनोंने मिलकर बड़े भाई और बड़ी भाभीके चरण पकड़कर विनती की—'हमको अलग मत समझिये।'

दोनोंकी सच्ची भावनाके सामने बड़े भाई तथा भाभीकी एक भी नहीं चली। छोटे भाईके पैसोंसे बड़े भाईने बंबई जाकर फिर व्यापार शुरू किया।

अब इनकी मानो कसौटी पूरी हो चुकी थी। ईश्वरने व्यापारमें फिरसे साथ दिया। खोयी हुई सम्पत्ति थोड़े ही समयमें वापस मिल गयी। 'अखण्ड आनन्द'।

—भारती महेन्द्र त्रिवेदी

(३)
व्यापारी सेठजीका अनुकरणीय एवं आदर्श धर्म-पालन

यह हालके कुछ ही वर्षों पूर्वकी बिल्कुल सत्य घटना उस समयकी है जब अपने देशमें साम्प्रदायिक दंगे खूब जोरोंसे चल रहे थे। लूट-मार, दंगा-फसाद एवं खून-खचरका बाजार खूब गरम था। चारों ओर भयंकर हाहाकार एवं आतङ्क फैला हुआ था। दूकानदार लोग प्रायः सदैव सावधान एवं चौकन्ने रहते थे। सम्बन्धित लोगोंके नाम आदि जान-बूझकर नहीं दिये गये हैं, पर आज भी इस महान् घटनाके प्रत्यक्षदर्शी मौजूद हैं, जो बराबर इस गाथाका गुणानुवाद करते रहते हैं।

शहरके खास व्यापारिक मुहल्लेमें एक अत्यन्त प्राचीन मुसल्मान खोजा व्यापारीकी दूकान थी जिसके मालिक वयोवृद्ध सीधे-सादे सज्जन थे। संयोगकी बात कि उन दिनोंमें एक बार वे आततायियोंसे घिर गये। दंगा-फसादमें अच्छा-बुरा थोड़े ही देखा जाता है, वहाँ तो 'सब धान बाइस पसेरी'—'गुड़ खल एक भाव'। गुंडोंने उनका एक मकान घेर लिया, जिसमें उनकी दूकान थी। उस समय वहाँ अराजकताका नग्न राज्य था। मालिक अब नीचे तो उतर ही नहीं सकता था। उसने प्रत्युत्पन्न मतिसे काम लिया और अपने मकानके पिछवाड़ेसे बिल्कुल सठा हुआ मकान, जो दूसरी सड़कके किनारेपर था, साहस करके धीरेसे उसमें कूद-फाँद गया और भागता हुआ वहाँ एक हिंदू व्यापारीकी गद्दीमें पहुँचा, जिसके मालिक भी बड़े ही व्यवहारकुशल, कर्मठ तथा निर्भीक प्रकृतिके सहृदय थे। ये हिंदू व्यापारी भी उसी लाइनमें बड़ा कारोबार करते थे, जिनमें ये खोजा साहब करते थे। अतः इनका आपसमें बहुत ही घनिष्ठ प्रेमका एवं व्यावहारिक व्यापारिक सम्पर्क भी था। अतः खोजा साहबको भागते आते देखकर इन्हें वस्तुस्थिति समझनेमें देर नहीं लगी और इन्होंने चटपट अपने खोजा व्यापारी मित्रको विशाल तहखानेके एक सुरक्षित स्थानमें छिपा दिया और आश्वासन दिया कि 'अब आप चिन्ता न करें। मेरे रहते अब आपका बाल भी बाँका नहीं हो सकता।'

इधर जब गुंडोंकी टोलीने अपने जालमें फँसे हुए शिकारको इस प्रकार सहसा निकल भागते देखा, तो वह भी सदर रास्तेसे उनका पीछा करते हुए हिंदू सेठजीके यहाँ पहुँची और सेठजीको तुरंत हवाले करनेकी माँग की। सेठजीने बड़ी निर्भीकतासे उत्तर दिया कि 'ये मेरी शरणमें आ गये हैं। मैंने इन्हें प्राण-रक्षाका वचन दे दिया है, अब भला इन्हें मारनेके लिये मैं आपको हवाले कैसे कर सकता हूँ।'

'आप हिंदू होकर ये कैसी बातें कर रहे हैं। आपको तो अब इस अवसरका लाभ उठाना चाहिये। ऐसे अवसर बार-बार थोड़े ही आते हैं।' गुंडोंका सरदार बोला।

'यह शरीर हिंदू हुआ तो क्या हुआ पर ये खोजा सेठ तो हमारी ही इसी व्यापारी लाइनके परस्पर सहयोगी व्यापारी बन्धु ठहरे। व्यापारी व्यापारी सभी परस्पर एक ही होते हैं। उनकी कोई जात नहीं होती। ये मुसल्मान आपलोगोंकी नजरमें हैं, मेरे तो ये सिर्फ सुहृद् व्यापारी भाई हैं। अतः एक व्यापारीके नाते दूसरे व्यापारी भाईकी रक्षा करना अपना कर्तव्य है। दूसरे, यों ये मेरे पड़ोसी भाई भी ठहरे। अतः पड़ोसी-धर्मका पालन भी मेरे लिये अनिवार्य है। फिर हमारा हिंदू-धर्म भी इतना नीचा नहीं जो किसी निरपराध-निरीहको मारनेका आदेश देता हो।' सेठजी निर्भीकतासे बोले।

'तो फिर इस वक्त खोजा साहबसे मुँहमाँगी रकम ऐंठनेका ही मौका दीजिये। हाथमें आये हुए शिकारसे स्वार्थ-साधनका यही सबसे अच्छा सुअवसर है। जब ये आपके परस्पर व्यापारी मित्र हैं तो बहुत ही अच्छी बात है। अब हम इन्हें मारेंगे नहीं, पर इस परिस्थितिका हमें पूरा लाभ उठाने दें। ऐसी करोड़पति मोटी मुर्गी फँसी है। अतः जान बचानेके लिये ये हमें मुँहमाँगी रकम खुशीसे दे देंगे। इनके प्राण बच जायँगे और आपके भी पड़ोसी एवं परस्पर व्यापारी मित्रधर्मका पालन हो जायगा। एक तीरसे दो शिकार होंगे। हमारा भी उद्देश्य पूर्ण होगा। एवं आपकी भी बात बनी रहेगी। इसपर भी यदि आप चाहें तो इसमें आपका भी हिस्सा········।'

इतने बड़े लोभकी वृत्ति सेठजीके आदर्श मित्र-धर्मको

न डिगा सकी। अतः उन्होंने बीचहीमें बात काटते हुए फटकारा—'शर्म नहीं आती तुमलोगोंको ऐसी बुरी एवं गिरी बात कहनेमें। जिसे मैंने शरण दी, उसके साथ मैं कभी विश्वासघात नहीं करूँगा—चाहे जो कुछ हो जाय। आपलोग यहाँसे चले जायँ, अन्यथा परिणाम अच्छा नहीं होगा। यदि आपलोग मेरे साथ दंगा-फसाद करेंगे तो मेरे आदमी भी आपका मुकाबला करनेमें समर्थ हैं।'

गुंडोंने अपनी दाल गलती न देखकर चुपचाप भीगी बिल्लीकी तरह अपना रास्ता नापा; क्योंकि व्यर्थके खून-खराबीमें कोई सार नहीं था। कुछ हाथ नहीं लगता। वे किसी दूसरे शिकारकी टोहमें लगे। इस प्रकार सेठजीने अपने खोजा व्यापारी बन्धुकी जान बचाकर अपने मित्रधर्म, पड़ोसी-धर्म, व्यापारी-धर्म तथा वास्तविक हिंदूधर्मका पालन-कर एक आदर्श एवं गौरवपूर्ण स्तुत्य कार्य किया। इतना ही नहीं, खोजा साहबको तबतक कई दिनोंतक उसी जगह छिपाये रक्खा, जबतक कि स्थिति शान्त न हुई। बादमें जब खोजा साहब अपनी दूकान जाने लगे तो वह दृश्य बड़ा ही मार्मिक एवं दर्शनीय था। खोजा साहबकी आँखोंसे आँसू बह रहे थे। कण्ठ और वाणी अवरुद्ध थी। हृदय गद्गद हो उठा था। बड़ी कठिनतासे रुँधे स्वरमें बोल पाये 'सेठजी! आपने मेरी जान बचायी, यह एहसान जीवनभर नहीं भूलूँगा। मालिक आपका भला करेगा।'

बचानेवाला तो कोई और ही है। हाँ, इस शरीरने तो पड़ोसी एवं परस्पर व्यापारी मित्रधर्मका पालनमात्र किया है। इसमें एहसानकी कौन-सी बात? व्यापारी व्यापारी सब एक हैं। यह तो मेरा कर्तव्य था जिसका प्रत्येक व्यवसायी-बन्धुको परस्पर पालन करना चाहिये। खोजा साहब इनकी ओर टकटकी बाँधे नतमस्तक हो इन्हें निहार रहे थे और सेठजी 'इसी प्रकार उन्हें। अब और शब्दोंकी कोई आवश्यकता नहीं थी।

—बल्लभदास बिन्नानी, 'व्रजेश' साहित्यरत्न, साहित्यालंकार

(४)

सहृदय रेलवे अधिकारी

कुछ समय पहलेका एक प्रसंग है। मैं अपनी माताजी तथा मेरे छोटे भाई-बहनोंके साथ ऊनासे राज-कोट जा रहा था। वेरावलमें गाड़ी बदलनी थी। वहाँसे गाड़ी बदलकर हमलोग वेरावल—वीरमगामकी गाड़ीमें सवार हुए। गाड़ी चलनेके लगभग पौन घंटे बाद मालिया-हाटी स्टेशनपर गाड़ी रुकी। वहाँ एक वयोवृद्ध पुरुष हमारे डिब्बेमें चढ़े। हमारी सीटके पास कोनेमें एक जगह थी, वहाँ आकर बैठ गये। सामानमें उनके पास एक खाली झोला था और एकमें एक लकड़ी। इसके सिवा कुछ भी न था।

समयपर गाड़ी चली और चालू गाड़ीमें हमारे डिब्बेमें टिकट-चेकर साहेब आये। सबकी टिकटें देख लेनेके बाद उन वृद्ध पुरुषसे टिकट माँगी। उन वृद्ध पुरुषने बड़ी ही करुण मुखाकृतिसे कहा—'बापजी-टीकस तो नहीं है।' मेरे मनमें तुरंत ही आया कि अब तो टिकट-चेकरका पारा उछलेगा और इस बेचारेपर आ बनेगी। परंतु ऐसा न होकर हमने उलटी ही बात देखी। टिकट-चेकरने कहा—'कहाँ जाना है? कहाँसे सवार हुए हैं? टिकट क्यों नहीं ली?' जरा-सी भी रूखाईसे रहित उनकी बातें सुनकर मेरा मन भी कुछ हल्का हो गया। उन वृद्ध पुरुषने कातरमुख तथा रोती आवाजसे कहा—'साब, मालियामें ही चढ़ा हूँ। लड़कीके लड़केकी दवा लानेके लिये डाक्टरजीने जूनागढ़ जानेको कहा है, इसलिये जूनागढ़ जाना है। दवाके पैसे भी तुम-जैसे भले आदमियोंसे माँग-माँगकर लिये हैं। टीकस लूँ तो दवाके लिये कैसे क्या करूँ? गाड़ीमें बैठा तभी यह लगा कि कोई टीकस माँगेगा तो क्या होगा। अब तुमको जँचे सो करो, यह लो आठ रुपया तीन आना और यह डाक्टरकी चिट्ठी। तुमको ठीक लगे सो करो। बाकी मेरे पास अब कुछ भी नहीं है।'

सारी बात सुननेके बाद उन टिकट-चेकरने वृद्ध पुरुषको पैसे तथा डाक्टरकी चिट्ठी लौटाते हुए बिना ही कुछ कहे मालियासे जूनागढ़ तककी टिकट बना दी। साथ ही, अपनी जेबसे पाँच रुपयेका एक नोट निकाल-कर वृद्ध पुरुषके हाथपर रखते हुए कहा—'लो, यह जूनागढ़तककी टिकट, और लौटते समय इन पैसोंसे टिकट खरीद लेना। पैसे बच जाँ तो उनका अपने खर्चमें उपयोग कर लेना।'

इतना कहकर उन्होंने खिड़कीसे बाहरकी ओर नजर फिरा ली। मैंने उनकी आँखोंमें दो चार आँसू देखे। वे वृद्ध पुरुष तो साहबके पैरों पड़ने लगे—बोले, 'बापजी! सौ-सौ बरस जीओ। तुम्हारी कमाईमें बरकत हो।' आदि आशीर्वाद देते-देते वे गद्गद हो गये। इतनेमें केशोद स्टेशन आया। गाड़ी रुक गयी और चेकर साहेब अपने कर्त्तव्यपालनके लिये दूसरे डिब्बेमें चले गये।

मैं सोचता ही रह गया कि इस जमानेमें ऐसे सहृदय युवक अधिकारी भी हैं।

(अखण्ड आनन्द)

—मुकुन्द सोलंकी

(५)
आदर्श ईमानदारी

स्वार्थपरता एवं बेईमानीके इस अनैतिक युगमें निम्न सच्ची घटना ईमानदारीके प्रति आस्था उत्पन्न करती है।

लगभग पाँच वर्ष पूर्वकी घटना है।

मैं अपने विद्यालयके लिये विज्ञानका सामान खरीदने दिल्ली गया था, साथमें एक और प्राध्यापक महोदय थे।

वहाँ हम स्टेशनके निकट एक होटलमें ठहरे। चूँकि कई स्थानोंसे खरीदारी करनी थी, अतः मैंने प्रातः ही सारे दिनके लिये एक ताँगा किरायेपर ले लिया; परंतु किरायेका उससे कोई फसला नहीं किया। जब बाजारमें घूमते-घूमते दोपहर हो गयी तो एक वैष्णव भोजनालयमें हमने भोजन किया। साथमें ताँगेवालेको भी भोजन करा दिया।

विज्ञानके उपकरण काफी देख-भालके बाद खरीदे जाते हैं; क्योंकि एक तो वे मूल्यवान् होते हैं और दूसरे यह कि कहीं पुराना या घटिया माल न खरीद लिया जाय।

सामान खरीदते-खरीदते रात्रिके आठ बज गये। सारा सामान भिन्न-भिन्न प्रकारके पैकेटोंमें बँधवाया गया था।

होटल वापस आकर मैंने दो कुलियोंकी सहायतासे सारा सामान ऊपर अपने कमरेमें रखवाया।

ताँगेवालेने किरायेके दस रुपये माँगे; मैंने खुशीसे दस रुपये उसे दे दिये। वह खुश होकर चला गया। रात्रिको मैंने एवं मित्र महोदयने भोजन किया और सामानके हिसाबका मिलान करके सो गये।

ग्यारह बजेके लगभग किसीने कमरेका दरवाजा खटखटाया। मैंने पूछा—'कौन है ?'

उत्तर मिला—'हुजूर, मैं ताँगेवाला हूँ।' मैंने दरवाजा खोलकर पूछा—'अरे! तुम इस समय यहाँ कहाँ ?'

उसने कहा—'हुजूर, मेरा मकान पहाड़गंजमें है, जो यहाँसे सात-आठ मील दूर है। आपको उतारकर जब मैं घर पहुँचा तो रात्रिके नौ बज चुके थे। ताँगा खोलकर जब मैंने घोड़ेके आगे घास डालनेके लिये सीटके नीचे हाथ डाला तो एक पैकेट दिखायी दिया—सो वह लाया हूँ। सुबह आप उठते और एक पैकेट कम पाते तो कहते कि ताँगावाला बेईमान निकला। अब अपना पैकेट सँभालिये।'

मैंने पैकेट ले लिया, उसमें दो हजारका सामान था। वह चाहता तो उसे हजम कर सकता था। पर उसने ईमानदारीका मार्ग नहीं छोड़ा। मैं उसे पाँच रुपये इनाम देने लगा, पर उसने नहीं लिये।

निर्धन, तुच्छ, अशिक्षित एवं साधारण पेशेवाले ताँगेवालेकी ईमानदारी देखकर मेरे मनमें ईमानदारीके प्रति सच्ची आस्था एवं विश्वास उत्पन्न हो गया।

यह है ईमानदारीका ज्वलन्त दृष्टान्त।

—श्याममनोहर व्यास एम्० एस्०-सी, बी० एड्०

(६)
रक्तविकार और क्षय-रोगकी दवाका स्पष्टीकरण

'कल्याण' दिसम्बर सन् १९६७ के पृष्ठ १४०० पर लकवा, रक्तविकार तथा क्षय-रोगके नाशके लिये प्रयोग प्रकाशित हुए थे। उनके सम्बन्धमें मेरे पास सैकड़ों पत्र आये हैं। अतएव मैं नीचे जिज्ञासुओंकी जानकारीके लिये स्पष्टीकरण कर रहा हूँ।

(१) 'रक्तविकार'के लिये अधिक-से-अधिक मिश्री खानी चाहिये। उस दिन और कुछ भी खाना-पीना नहीं चाहिये। सिर्फ एक ही दिन मिश्री खाना है।

(२) जिस क्षय (T. B.) के रोगीको श्रद्धा हो, वह पहले एक दिन केवल पानका प्रयोग करे, पानमें केवल कत्था-चूना लगाया जाय। प्रति घंटे एक पान खाना चाहिये। उस दिन और कुछ भी नहीं खाना-पीना चाहिये। इसके सात दिनके बाद एक दिन गोमूत्रका प्रयोग करना चाहिये। प्रति घंटे (हर एक-एक घंटापर) एक-एक तोला गोमूत्र पिलाना चाहिये। शौच होने लगे तो गोमूत्र पिलाना बंद कर देना चाहिये। टी० बी० के रोगीको गोमूत्र देते समय तथा रोगीको स्वयं गोमूत्र पीते समय पहले-पीछे—

अच्युतानन्तगोविन्दनामोच्चारणभेषजात्।
नश्यन्ति सकला रोगाः सत्यं सत्यं वदाम्यहम्॥

भगवान् धन्वन्तरिकथित इस मन्त्रका जप अवश्य करना चाहिये। यह सर्वरोगनाशक लाभकारी मन्त्र है।

उस समय एक दिन गोमूत्र-पान तथा सात दिन बाद सिर्फ पान खानेके लिये लिखा गया था। मेरा तबतक यही अनुभव था कि इससे नये (टी० बी०) क्षय-रोगकी रुकावट होती है। परंतु कानपुरसे श्रीशिवबालकजी मिश्र, विनायक बीजभंडार, कल्याणपुरका पत्र मिला है, वे लिखते हैं कि 'सिर्फ एक दिन गोमूत्र तथा एक दिन पानका प्रयोग करनेसे एक सालका पुराना क्षय-रोग चला गया। इससे पहले इलाजमें सात सौ रुपये खर्च हो चुके थे, पर कोई लाभ नहीं था।' अतः क्षय-रोगियोंको, उचित समझें तो, ऊपर लिखे अनुसार पहले पान तथा सात दिन बाद गोमूत्रका प्रयोग करके देखना चाहिये।

—राधेश्याम 'मौनी बाबा'

सम्मान्य एवं प्रेमी ग्राहकों तथा पाठकोंको सूचना और निवेदन

(१) यह 'कल्याण'के ४२वें वर्षका ग्यारहवाँ अङ्क है। बारहवाँ अङ्क निकल जानेपर यह वर्ष पूरा हो जायगा। ४३ वें वर्षका प्रथम अङ्क 'परलोक और पुनर्जन्माङ्क' नामक विशेषाङ्क होगा। इसमें पुनर्जन्म और परलोकके सत्य सिद्धान्तको विविध-विभिन्न शास्त्र-वचनों, युक्तियों और प्राचीन तथा अर्वाचीन घटनाओंके उल्लेख-द्वारा प्रमाणित करनेवाले विवेचनापूर्ण और रोचक लेख रहेंगे। मानव-जीवनका उद्देश्य, उसकी सिद्धिके उपाय, परलोक और पुनर्जन्मकी दुर्गतियोंसे बचनेके साधन इत्यादि भी सब बताये जायँगे। यह अङ्क वर्तमान नास्तिकताके प्रवाहमें बहनेवाले जगत्को सत्यका सत्पथ बतानेवाला होगा और मानवमात्रके लिये अत्यन्त उपयोगी होगा। इसमें सादे तथा रंगीन चित्र भी दिये जायँगे। पृष्ठ-संख्या लगभग सात सौ होगी।

(२) 'कल्याण'का वार्षिक मूल्य पूर्ववत् ९.०० रुपया ही रक्खा गया है, जो वास्तवमें बहुत कम है। अतः आप वार्षिक मूल्य मनीआर्डरसे तुरंत भेजकर ग्राहक बन जाइये। मनीआर्डर-फार्म अगले अङ्कके साथ भेजनेकी बात है। रुपये भेजते समय मनीआर्डरमें अपना नाम, पता, ग्राम या मुहल्ला, डाकघर, जिला, प्रदेश आदि साफ-साफ अक्षरोंमें लिखनेकी कृपा करें। ग्राहक-नम्बर अवश्य लिखें। नये ग्राहक हों तो 'नया ग्राहक' लिखना न भूलें।

(३) ग्राहक-संख्या न लिखनेसे आपका शुभ नाम नये ग्राहकोंमें लिखा जा सकता है। इससे विशेषाङ्ककी एक प्रति नये नम्बरोंसे तथा एक प्रति पुराने नम्बरोंसे वी० पी० द्वारा जा सकती है। यह भी सम्भव है कि आप उधरसे रुपये कुछ देरसे भेजें और पहले ही यहाँसे आपके नाम वी० पी० चली जाय। दोनों ही स्थितियोंमें आप कृपापूर्वक वी० पी० वापस न लौटाकर नये ग्राहक बना दें और उनका नाम-पता साफ-साफ लिखनेकी कृपा करें। सभी ग्राहक-पाठक महानुभावोंसे तथा पाठिका-ग्राहिका देवियोंसे यह भी निवेदन है कि वे प्रयत्न करके 'कल्याण'के दो-दो नये ग्राहक बनाकर उनके रुपये मनीआर्डरद्वारा शीघ्र भिजवानेकी कृपा करें। इससे भगवान्‌की सेवा होगी।

(४) जिन पुराने ग्राहकोंको किसी कारणवश ग्राहक न रहना हो, वे कृपापूर्वक एक कार्ड लिखकर अवश्य सूचना दे दें, जिससे व्यर्थ 'कल्याण'-कार्यालयको हानि न सहनी पड़े।

(५) किसी कारणवश 'कल्याण' बंद हो जाय तो केवल 'विशेषाङ्क' और उसके बादके जितने अङ्क पहुँच जायँ, उन्हींमें पूरे वर्षका मूल्य समाप्त हुआ समझ लेना चाहिये; क्योंकि अकेले विशेषाङ्कका ही मूल्य रु० ९.०० (नौ रुपये) हैं।

(६) इस वर्ष भी सजिल्द अङ्क देनेमें कठिनता है और बहुत विलम्बसे दिये जानेकी सम्भावना है। यों सजिल्दका मूल्य रु० १०.५० है।

(७) गीताप्रेसका पुस्तक-विभाग तथा 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी)का विभाग 'कल्याण' विभागसे अलग है। अतएव 'कल्याण'के मूल्यके साथ पुस्तकोंके लिये तथा 'कल्याण-कल्पतरु' (अंग्रेजी)के लिये रुपये न भेजें। उनके लिये अलग रुपये भेजें। चेक या ड्राफ्ट तो सभी 'गीताप्रेस'के नामसे भेजने चाहिये। गोरखपुरके बाहरके चेकोंमें १.०० रुपया बैंक-चार्ज जोड़कर भेजना चाहिये। पुस्तकोंके आर्डर तथा रुपये व्यवस्थापक 'गीताप्रेस'के नामसे तथा 'कल्याण-कल्पतरु'के रुपये व्यवस्थापक 'कल्याण-कल्पतरु'के नामसे भेजने चाहिये।

व्यवस्थापक—'कल्याण,' पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)

'परलोक और पुनर्जन्माङ्क' के लिये लेखक महानुभावोंसे क्षमा-याचना

'परलोक और पुनर्जन्माङ्क'के लिये बहुत अधिक लेख आ चुके हैं और अबतक प्रतिदिन आ रहे हैं। सम्भवतः आये हुए लेखोंमेंसे आधेसे भी कम लेख इस अङ्कमें जा सकेंगे। बचे हुए लेखोंमें बहुतसे तो ऐसे हैं जो केवल लिखनेके लिये ही लिखे गये हैं। अच्छे लेख भी हैं, पर वे ऐसे विषयोंपर हैं जिनपर कई लेख विशेषाङ्कमें दिये जा चुके हैं। अवशेष लेखोंमेंसे यदि अवकाश मिला तो अगले अङ्कोंमें कुछ लेख छापे जा सकते हैं, अन्यथा लेखक महानुभावोंके वापस माँगनेपर वे लौटा दिये जायँगे। यद्यपि फरवरीका अङ्क भी इसीके परिशिष्टके रूपमें निकालनेका विचार है, पर इस अङ्कमें भी बहुत कम लेख जा सकेंगे। इस परिस्थितिकी विवशताके लिये हम अपने सभी कृपालु लेखक महानुभावोंसे हाथ जोड़कर क्षमा-प्रार्थना करते हैं।

दो पुस्तकें ! *प्रकाशित हो गयीं !!*

असीम नीचता और असीम साधुता

(पढ़ो, समझो और करो, भाग ७)

आकार २०×३० सोलह पेजी, पृष्ठ १३०, मूल्य पचास पैसे, डाकखर्च ८५ पैसे रजिस्ट्रीसे।

यह 'पढ़ो, समझो और करो' का सातवाँ भाग है। इसमें भी कई ऐसी सच्ची घटनाओंका उल्लेख है कि जिनमें मानवकी सच्ची मानवताके मङ्गलमय दर्शन होते हैं और जिनका अनुकरण करनेसे उच्चस्तरके पवित्र आदर्श जीवनका निर्माण हो सकता है। इस प्रकारके भाव, विचार तथा आदर्श आचरणका जितना अधिक प्रसार होगा, उतना ही मानव-जगत्‌में सुख-शान्ति तथा प्रेमका विस्तार होगा। प्रस्तुत पुस्तकमें 'भूलका प्रायश्चित्त तथा शुद्धबुद्धिके विचार' से लेकर 'ताँगेवालेकी ईमानदारी' तक ५१ घटनाओंका संकलन है।

इस पुस्तकके स्वयं अध्ययन करने, मनन करने और तदनुसार आचरण करनेसे लोकहितका यथासाध्य अधिकाधिक कार्य हो सकेगा, ऐसी आशा है।

श्रीजयदयालजी गोयन्दकाद्वारा लिखित

बालकोंके कर्तव्य

आकार २० × ३० सोलह पेजी, पृष्ठ ८६, मूल्य तीस पैसे, डाकखर्च १५ पैसे बुकपोस्टसे।

प्रस्तुत ग्रन्थमें ब्रह्मलीन श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दकाके प्रभावशाली बालकोपयोगी दो निबन्धोंको प्रकाशित किया गया है। इनमें हमारी पवित्र भारतीय संस्कृतिके अनुसार बालकोंके जीवनको शुद्ध, समुन्नत तथा सुखी बनानेवाले बालकोंके कर्तव्यका बड़ा ही सुन्दर शास्त्रीय बोध कराया गया है। आजकी बढ़ती हुई अनुशासनहीनता एवं उच्छृङ्खलताओंके वातावरणमें इस पुस्तिकाके प्रचारसे बहुत कुछ सुधार हो सकता है।

आशा है कि पाठकगण इस पुस्तिकाके प्रचारका जितना प्रयास हो सके उतना अवश्य ही करेंगे।

गीता-दैनन्दिनी सन् १९६९ ई०

आकार २२ × २९ बत्तीस पेजी, पृष्ठ ४१६, मूल्य ७५ पैसे, सजिल्द ९० पैसे, डाकखर्च ९० पैसे अलग।

गीता-दैनन्दिनीके विक्रेताओंको विशेष रियायत मिलती है। अतः वे लोग उचित दामोंमें दे सकते हैं। आप उनसे माँगिये।

हिन्दी बालपोथी शिशु पाठ भाग १—के दाम ३० पैसेसे घटाकर अबसे २५ पैसे कर दिये गये हैं।

व्यवस्थापक—गीताप्रेस, पो० गीताप्रेस (गोरखपुर)